अनन्तश्री विभूषित

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

आनन्द-बिन्दु

आनन्द-बिन्दु

•

प्रवचन

अनन्तश्री विभूषित

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

•

संकलन

डॉ. लीना ग्रोवर

•

सम्पादन

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

प्रकाशक व पुस्तक प्राप्ति स्थान :

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

'विपुल' 28/16 बी. जी. खेरमार्ग
मालावार हिल
मुम्बई - 400 006
फोन (022) 23682055
मो.: 09619858361

स्वामीश्री अखण्डानन्द पुस्तकालय
आनन्द कुटीर, मोतीझील
वृन्दावन - 281 121
फोन : (0565) 2913043, 2540487
मो. 09837219460

●

प्रथम संस्करण 1100
संन्यास जयन्ती, 7 फरवरी 1998

द्वितीय संस्करण 1100
संन्यास जयन्ती 2016

●

मूल्य : रु. 70/-

●

मुद्रक :
आनन्दकानन प्रेस
डी. 14/65, टेढ़ीनीम
वाराणसी - 221001
फोन (0542) 2392337

विषय-सूची

●

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

प्रभुको परदा पसन्द नहीं

एक बारकी बात है–'श्रीउड़ियाबाबाजी' महाराजने मुझसे किसी महारानीको भागवत सुनानेके लिए कहा। मैं भागवत सुनानेके लिए गया। सब इन्तजाम बहुत अच्छा किया था। मेरे लिए बहुत बढ़िया सिंहासन बनाया था। मैं बैठ गया। मैंने देखा–एक ओर चिक लगी थी। महारानी चिकके भीतर जाकर बैठ गयीं। मेरे सामने नहीं आयीं। मैंने कहा–यदि महारानीको चिकके भीतर बैठकर कथा सुननी हो, तो किसी और पण्डितको बुला लें। यदि मुझसे कथा सुननी हो, तो महारानी अपना घूँघट हटाकर मेरे सामने आकर बैठें। वर्ना, मैं कथा सुनानेवाला नहीं हूँ।' फिर तो क्या कहना? महारानी अपना घूँघट हटाकर मेरे सामने आकर बैठीं और उन्होंने बड़े प्रेमसे मुझसे भागवत-कथा सुनी।

ठीक इसी तरह, प्रभुको परदा पसन्द नहीं है। यदि प्रभुसे मिलना है, तो परदा हटाकर मिलना होता है। प्रभु तो सबके हृदयमें रहते हैं। किसी भी वस्तुके नाम-रूप-क्रियाको अलग कर देनेपर, अन्तमें, जो कुछ शेष रह जाता है, सो प्रभु ही हैं। भले ही, एक तृण ही क्यों न हो! जहाँ तृणका नाम-रूप-क्रियात्मक आवरण हटा दिया, वहाँ सत् रूपसे प्रभुकी प्राप्ति हो गयी। सर्वरूपमें प्रभु ही हैं इस भावसे जानो।

अपनी सम्पूर्ण भावनाओंको लेकर प्रभुकी शरणमें जाओ। वही शरण हैं। उन्हींसे मिलो। जब वह प्रसन्न होंगे, तब वह निरावरण होकर तुमसे मिलेंगे। प्रभुको परदा पसन्द नहीं है। इस निरावरण मिलनसे उस पराशान्ति रूप प्रभुकी प्राप्ति होती है, जो शाश्वत स्थान है। वहाँ किसी तरहकी अशान्ति नहीं है, विक्षेप नहीं है, हिलना-डोलना नहीं है, आना-जाना नहीं है। वहाँ पराशान्ति है।

'तत्प्रसादात् परां शान्तिं।'

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

'मालिक! मुझसे भूल हो गयी!'

किसी सज्जनको एक नौकरकी जरूरत थी। वह Interview (साक्षात्कार)के लिए लोगोंको बुलाया करते थे। जब कोई नौकर आता, तब उससे कहते-'एक गिलास पानी लेकर आओ!' जब वह पानीका गिलास लेकर आता, तब कहते-'इस पानीको फेंक दो!' जब वह फेंक देता, तब पूछते-'पानी क्यों फेंका?' यदि आगन्तुक नौकर कहता-'मालिक! आपने ही तो मुझे पानी फेंकनेको कहा', तो वह सज्जन कहते-'हाँ! ठीक कहा। अच्छा! अब तुम जाओ!' उस नौकरको अपने पास नहीं रखते। कई दिनोंतक यह क्रम चला। अनेक नौकर आये और गये। एक दिन एक नौकर आया। उससे भी वैसा ही कहा-'एक गिलास पानी लेकर आओ!' जब वह पानीका गिलास लेकर आया, तब कहा-'इस पानीको फेंक दो!' जब उसने पानी फेंक दिया, तब पूछा-'तुमने यह पानी क्यों फेंक दिया?' नौकरने कहा-'मालिक! मुझसे भूल हो गयी। मेरी गलतीको माफ करें!' बस! झट उन्होंने उस नौकरको पसन्द कर लिया और अपनी सेवामें नियुक्त कर लिया।

भक्ति ऐसी ही होती है। भक्तिमें चाहे '**भजताम् अनन्यभाक्**' हो, चाहे '**भक्त्या मामभिजानाति**' हो, जीवका '**नियोज्य कर्तृत्व**' बना रहता है। यह भक्तोंका पारिभाषिक शब्द है। भगवान् मुख्य कर्त्ता हैं और जीव गौण, नियोज्य कर्त्ता है। भगवान् जैसा नियुक्त करते हैं, जीव वैसा ही करता है। यदि कभी कोई गलती हो जाती है, तो ढीठ होकर भगवान्से यह नहीं कहता कि 'मैंने गलती कहाँ की है? यह गलती तो तुमने ही मुझसे करवायी है।' देखो!

सेवक सो जो करै सेवकाई।

सच्चा सेवक तो वही है, जो भगवान् पर ढिठाईपूर्वक दोषारोपण न करे कि 'यह गलती तो तुमने ही की है' अथवा 'तुमने ही तो मुझसे यह गलती करवायी है।' जो गलतीका भार अपने ऊपर ले ले, वही तो सच्चा सेवक है। *गुण तुम्हार समुझै निज दोषू।*

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

‘दीनबन्धु! दीनानाथ! मेरी डोरी तेरे हाथ!’

वृन्दावनमें एक लड़कीका ब्याह हुआ। उसके ससुरालके लोग पाकिस्तानके थे। वे लोग हिन्दू थे; लेकिन, पाकिस्तानमें थे। उनका व्यापार पाकिस्तानमें था। अब यह तय हुआ कि विवाह करके वे लड़कीको पाकिस्तानमें ले जायेंगे और वहीं रहेंगे। नारायण! वह लड़की समझदार थी। कृष्णभक्त भी थी। उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ कि ‘मैं कितनी बदनसीब हूँ कि मुझे वृन्दावन छोड़कर जाना पड़ेगा। अपने प्यारे कृष्णका लीलाधाम छोड़कर जानेका मन भला किस अभागिनका होगा! हे प्रभु! मैं पाकिस्तानमें जाऊँगी, तो वहाँ कैसे रहूँगी?’ अब उसने जपना शुरू किया–

दीनबन्धु दीनानाथ, मेरी डोरी तेरे हाथ।
शरण पड़े की राखो लाज, दीनबन्धु दीनानाथ।।

उस लड़कीके मुँहसे तीन दिनोंतक लगातार यह जप होता रहा! यह आर्त पुकार निकलती रही। चौथे दिन ही लड़केके बापका पाकिस्तानसे तार आया, जिसमें लिखा था–‘बेटा! अब तुम विवाह करके वहीं वृन्दावनमें बस जाओ! मैं तुम्हें लाख रुपये भेज रहा हूँ। तुम वहीं कोई व्यापार शुरू कर दो। यहाँ पाकिस्तानमें आनेकी जरूरत नहीं है। खूब आनन्दसे वृन्दावनमें रहकर ही व्यापार करो!’

नारायण! जब मनमें आर्ति आती है, तब हृदयकी गम्भीर सम्वेदना प्रकट होती है। जब आर्त पुकार भगवन्नामसे मिल जाती है, तब आर्त प्रार्थनाका प्रभाव अद्भुत होता है। संकट तुरन्त मिट जाता है और चमत्कार ही हो जाता है। गजेन्द्रकी आर्त पुकार सुनकर गोविन्दकी कृपा–अनुग्रह की कथा आपने सुनी ही है। द्रौपदीकी आर्त पुकारने कृष्णको वस्त्रावतारमें प्रकट कर दिया। प्रार्थनामें बड़ी भारी शक्ति है। अनहोनीको होनी कर देना, प्रार्थनाका चमत्कार है। सीताराम! हृदयके अन्तरतम सूक्ष्मतम प्रदेशसे निकली हुई सच्ची पुकारको सुनकर भगवान्‌का आसन भी डोलने लगता है।

जरा भावना से कीजिये पुकार।
उदासी मन काहेको करे? तेरा रामजी करेंगे बेड़ा पार।।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

यथोक्तकारी भगवान्

'काञ्ची'में नारायणका एक मन्दिर है। उसमें राजाकी ओरसे एक पुजारी नियुक्त था। वह पुजारी ब्राह्मण था और साथ ही एक महात्माका भक्त भी। एक दिन राजा पुजारीपर नाराज हो गया। उसने पुजारीसे कहा–'तुम हमारा राज्य छोड़कर चले जाओ!' पुजारी महात्माके पास गया और बोला–'महात्माजी! राजाने मुझे अपने राज्यसे निकाल दिया है। मैं जा रहा हूँ।' महात्माने कहा–'बेटा! तुम ही मुझे रोटी खिलाते हो। तुम ही मुझे जल पिलाते हो। तुम ही मेरी सेवा-शुश्रूषा करते हो। जब तुम ही यहाँसे जा रहे हो, तब मैं यहाँ कैसे रहूँगा? मैं भी तुम्हारे साथ ही चलता हूँ।' अब पुजारी क्या बोले? जैसी महात्माकी इच्छा। जैसी महात्माकी आज्ञा। जब चलने लगे, तब महात्माजी फिर बोले–'बेटा! चलो, चलनेसे पहले भगवान्‌से बात कर लें!' अब वे नारायणके पास गये और बोले–'नारायण! हम यह नगर छोड़कर जा रहे हैं।' नारायणने कहा–'मैं तो महात्माओंके साथ-साथ रहता हूँ। यदि तुम चले जाओगे, तो मैं यहाँ कैसे रहूँगा? मैं भी तुम्हारे चलता हूँ।' इतना कहकर उन्होंने

अपनी शेष-शय्या लपेट ली और अपनी काँखके नीचे दबा ली। पुजारीकी सामग्री पुजारीकी काँखकी नीचे; महात्माकी सामग्री महात्माकी काँखके नीचे; और, नारायणकी सामग्री नारायणकी काँखके नीचे। तीनों चल पड़े। आगे-आगे पुजारी; उसके पीछे महात्मा और महात्माके पीछे नारायण।

तीनोंके चले जानेसे नगरमें अन्धकार छा गया। जब राजाको मालूम पड़ा, तब वह दौड़े-दौड़े गये। नारायणके चरणोंमें गिरकर राजाने विनयसे कहा-'प्रभु! आप मत जाइये!' नारायणने कहा-'राजन्! जब मेरे ये महात्मा जा रहे हैं, तब मैं यहाँ कैसे रह सकता हूँ? तुम महात्माको मनाओ!' अब राजा महात्माके पास गये। महात्माने कहा-'जब मेरा यह सेवक जा रहा है, तब मैं यहाँ कैसे रह सकता हूँ? राजन्! तुम मेरे सेवकको मनाओ!' अन्ततोगत्वा, राजाने सेवकको अर्थात् अपने पुजारीको मनाया। पुजारी वापिस लौटा; महात्मा वापिस लौटे; और, नारायण भी वापिस लौट आये। जब लौटनेपर नारायणने अपनी शेष-शय्या बिछायी, तब शेषका मुँह उल्टा हो गया। इसलिए, काञ्चीके उस मन्दिरमें नारायण अब भी हैं तो शेष-शय्यापर; किन्तु, शेषका मुँह, जो छत्रके रूपमें छाया करता हुआ होना चाहिए, वैसा न होकर उल्टा है। संस्कृतमें इसे कहते हैं-'यथोक्तकारी भगवान्' अर्थात् 'आज्ञाकारी भगवान्।'

अपना अभिमान छोड़कर अपने सेवककी आज्ञानुसार चलना भगवान्की एक विशेषता है। महात्माने कहा-'नारायण! हम यह नगर छोड़कर जा रहे हैं।' नारायण भी नगर छोड़कर महात्माके साथ चल पड़े। महात्मा रुक गये, तो नारायण स्वयं भी रुक गये। महात्माके वापिस लौटनेपर नारायण भी वापस लौट आये। अतः नारायणका नाम हुआ-'यथोक्तकारी भगवान्।'

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

‘बंदउँ नाम राम रघुबर को’

नाम नम करनेवाली चीज है। जो कड़ी चीजको नम बना दे; जो कड़े दिलको नम्र कर दे, उसको ‘नाम’ कहते हैं। हम राम-नामकी वन्दना करते हैं। देखो! सब सन्त कहते हैं कि -*राम ब्रह्म परमारथ रूपा।*

राम तो ब्रह्म है। राम तो परमेश्वरका नाम है। ‘गुरुनानक’, ‘कबीर’ इत्यादि परब्रह्म परमात्माको ही राम कहते हैं। ‘गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज’ कहते हैं कि बाबा! वे सब कहते होंगे कि राम तो ब्रह्मका नाम है। हम तो सीधी-सादी बात जानते हैं- *‘बंदउँ नाम राम रघुबर को।’*

हम तो रघुवरके राम-नामकी वन्दना करते हैं। होता होगा निराकार ईश्वरका नाम राम। होता होगा राम माने ॐ। होती होगी राम नामकी ध्वनि अन्तरमें। अरे बाबा! हम तो गाँवकी गँवारू भाषामें सीधी-सादी बात बोलते हैं कि हम तो रघुबरका जो राम नाम है, उसकी वन्दना करते हैं।

रघु माने रघुवंश। वर माने श्रेष्ठ। रघुवर माने रघुवंशियोंमें जो श्रेष्ठ हैं, उन रामके नामकी हम वन्दना करते हैं। रघु माने लघु। लघु माने छोटा। अंश रूप जो छोटे-छोटे जीव होते हैं ना, उनको लघु बोलते हैं। इस प्रकार, रघु माने लघु और लघु माने जीव। रघुवर माने जीववर। जीवके जो वर है-पति हैं, उन रामके नामकी हम वन्दना करते हैं-

‘बंदउँ नाम राम रघुवर को।’

यह ‘राम’ शब्द बड़ा विलक्षण है। एक महात्मा थे। हम लोग उनका सत्संग करनेके लिए जाते थे। उन्होंने एक दिन बताया कि शरीरमें जितने मोड़ हैं, सब ‘रेफ’ हैं-‘र’ हैं। आप जरा गौर करके देखना। यह हाथका मोड़ बिलकुल ‘र’की तरह है कि नहीं? अंगुली मोड़कर देख लो। घुटना मोड़कर देख लो। मुड़ी हुई कमर देख लो। हमारे शरीरमें जितने भी मोड़ हैं, सब रेफ-ही-रेफ हैं। हमारा शरीर काहेसे बना है! रेफ-ही-रेफसे बना है। छोड़ो राग। छोड़ो द्वेष। अपनेको मनुष्य-हिन्दू-ब्राह्मण-संन्यासी मत सोचो। सिर्फ यह सोचो कि हमारा यह शरीर ‘रेफ’से बना है। देखो फिर, देहाभिमान कैसे गलता है? यह ‘राम’ शब्दमें जो ‘र’ है, यह देहाभिमानको भस्म करनेके लिए अग्नि है। बड़ी विचित्र वस्तु है।

असलमें, रघुवरका 'राम' नाम अग्नि-आदित्य-चन्द्रमा-इन तीनोंका कारण है।

'हेतु कृसानु भानु हिमकर को।'

रघुवरका 'राम' नाम कृशान रूप है-अग्नि रूप है। इससे एक आग पैदा होती है, जो संसारके बन्धनसे मुक्त करती है। संसार-बन्धन-दुःखको जला देती है। यह रुद्रात्मक है। राम नाम भानुरूप है-सूर्य रूप है। यह प्रकाशक है। राम नाम हिमकर रूप है-चन्द्रमा रूप है। यह सर्वत्र शीतलता-चाँदनी देनेवाला है। अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा-इन तीनोंके बीज राममें हैं। इनका बीज है-'र', 'आ' और 'म'। 'र' अग्निबीज है। 'आ' आदित्य बीज है। 'म' चन्द्रबीज है।

जब रामका ध्यान करते हैं, तब वाक्, दृष्टि और मन-इन तीनोंकी एकता हो जाती है। अग्निबीज होनेसे वाक्, आदित्यबीज होनेसे दृष्टि और चन्द्रबीज होनेसे मन। जब रामका ध्यान करते हैं, तब शब्द, दृष्टि और मन-मनकी वृत्तियाँ एक होकर भगवान्‌में लगते हैं। यदि राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम! ऐसे बोल करके जप करें, तो आवाज, आँख और मन-ये तीनों बन्द हो जायेंगे। राम नामके जपसे कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ और अन्तःकरण एकदम समाहित हो जायेंगे। समाधि लग जायेगी और परमात्माका दर्शन होगा।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं कि हमें समाधिमें परमात्माका दर्शन नहीं चाहिए। हमें तो यह जो आँखोंके बाहर खेलनेवाले राम हैं, वह चाहिये। असलमें, जबतक बाहर और भीतरका भेद होता है, तबतक रामका दर्शन नहीं होता है। जो भीतरवाले राम हैं-कलेजेके भीतर जो बेचारे बन्द कोठरीमें बैठे हैं, वह सच्चे राम हैं; और, जो खुले मैदानमें धरतीपर खेलनेवाले राम हैं, वह सच्चे राम नहीं हैं-ऐसा सोचना बिलकुल ठीक नहीं है। अरे बाबा! राम दिलमें भी रमते हैं और धरतीपर भी खेलते हैं। राम दोनों जगह बिलकुल एक हैं। यह रघुवर रामरूप है। हम रघुवर रामकी वन्दना करते हैं।

रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदे नासौ परब्रह्माभिधीयते।।

चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दसरथे हरौ।
रघोःकुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः।।
स राम इति लोकेऽस्मिन् विद्वद्भिः प्रकटीकृतः।।

रघुवरका राम नाम विधि-हरि-हरमय है। 'राम' शब्दमें 'र' 'आ' 'म' सम्पूर्ण देवताओंका बीज है। 'र' माने सम्पूर्ण सृष्टि रचयिता विधाता-ब्रह्मा। 'आ' माने अखिल सृष्टि पालक वासुदेव रूप भगवान् श्रीहरि-विष्णु। 'म' माने समस्त सृष्टि संहारक हर-रुद्र। राम नाम ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रमय है।

रघुवरका राम नाम वेदका प्राण है। वेदका प्राण प्रणव है। राम नाम प्रणव-रूप है। प्रणव 'ओम'में 'अकार', 'उकार', 'मकार'-ये तीन मात्रा है और 'अमात्र' है। 'अकार' माने स्थूल शरीर, सत्त्वगुण, जाग्रतावस्था, व्यष्टि-अभिमानी विश्व और समष्टि-अभिमानी विराट्। 'उकार' माने सूक्ष्म शरीर, रजोगुण, स्वप्नावस्था, व्यष्टि-अभिमानी तैजस और समष्टि अभिमानी हिरण्यगर्भ। 'मकार' माने कारण शरीर, तमोगुण, सुषुप्तावस्था, व्यष्टि अभिमानी प्राज्ञ और समष्टि अभिमानी ईश्वर। 'अमात्र' माने स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरोंसे परे, सत्त्व-रज-तम गुणोंसे परे, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्थाओंसे अतीत और विश्व-विराट्, तैजस-हिरण्यगर्भ, प्राज्ञ-ईश्वर व्यष्टि-समष्टि अभिमानियोंसे अतीत तुरीय परब्रह्म परमात्मा। प्रणव परमात्माका नाम है। '**तस्य वाचको प्रणवः।**' राम नाम प्रणव-रूप परमात्माको सूचित करनेवाला है।

रघुवरका राम नाम अगुण है। यह सत्त्व-रज-तम रूप त्रिगुण नहीं है। राम नाम अनुपम है। इसकी उपमा दुनियामें और कहीं नहीं है। राम नाम सम्पूर्ण गुणोंका निधान है। समस्त गुणनिधान सदृश है। असलमें, राम नाम अगुण है-गुणोंका खजाना नहीं है; लेकिन, प्रतीतिकी दृष्टिसे सम्पूर्ण गुणोंका खजाना है। जो चाहो, सो सब राम नामसे मिले। जो राम तत्त्व है, वही राम नाम है। राम तत्त्व और राम नाम अलग-अलग नहीं हैं। राम तत्त्व और राम नाम-ये दोनों बिलकुल एक ही हैं।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

एक राम नाम

राम नाम सहस्त्र नामके समान है। एक बार राम नाम कह दो, तो वह सहस्त्र नामके समान होता है। स्वयं भगवान् शंकरने भगवती पार्वतीसे यह कहा है कि 'केवल एक राम नाम सहस्त्र नामके समूहके समान है।'

शंकरजी और पार्वतीजी दोनों साथ-साथ भोजन करते हैं। एक दिन पार्वतीजीको देर हो गयी। शंकरजीने कहा-'वरानने! आओ! भोजन करें!' पार्वतीजीने कहा-'स्वामी! अभी तक हमारा नियम पूरा नहीं हुआ है।' शंकरजीने पूछा-'प्रिये! तुम्हारा क्या नियम है?' पार्वतीजीने कहा-'हमारा प्रतिदिन सहस्त्र नामका पाठ करनेका नियम है। वह अभी पूरा नहीं हुआ है। जब नियम पूरा करें, तब भोजन करने आयें। हैं ना?' शंकरजीने कहा-'देवि! तुम तो सहस्त्र नाममें लगी हो। हम तो एक ही नाममें लगे रहते हैं। हमारा तो सहस्त्र नाम एक नाममें समाया हुआ है।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्त्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।।

बस! हम तो अपने इस मनोरम राम नाममें ही रमण करते हैं। हे मनोरमे! तुम भी राम नाममें रमो। केवल एक राम नाम हजार-

हजार नामके समूहके समान है।' जब पार्वतीजीने शंकरजीसे रामनामकी यह महिमा सुनी, तब उन्होंने भी प्रेम-मुदित मनसे कहा- 'राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!' और झटपट आकर शंकरजीके पास बैठ गयीं। दोनों साथ-साथ बैठकर आनन्दसे भोजन करने लगे।

शंकरजी पार्वतीजीके हृदयका प्रेम देख करके बड़े हर्षित हुए। उन्होंने स्त्रियोंमें भूषण जो पार्वतीजी हैं, उन्हें अपना आभूषण बना लिया। जो और महात्मा होते हैं, वे कहते हैं कि 'स्त्रीसे अलग रहो, अलग रहो, अलग रहो।' शंकरजी महात्मा हैं। वे अपनी स्त्रीको अपनी अर्धाङ्गिनी बनाकर रखते हैं। वे जानते हैं कि ऐसी स्त्री, जो राम-नाममें इतना विश्वास करती है; जो राम-नामसे इतना प्रेम करती है; जो हमारे ऊपर इतना विश्वास-प्रेम करती है; वह वस्तुतः स्त्रियोंमें भूषण है और आभूषणकी तरह धारण करने योग्य है। पार्वतीजी अपने पतिदेव शंकरजीके साथ सदा राम-नामका जप करती हैं।

जपकी बड़ी महिमा है! भगवान्‌के नामका जप करना चाहिए। राम-मन्त्र महामन्त्र है। शंकर भगवान् राम-नामका प्रभाव भलीभाँति जानते हैं। जब कोई भी प्राणी काशीमें मरने लगता है, तब शंकरजी उसको राम-नामका-तारक मंत्र 'राम रामाय नमः'-का उपदेश करते हैं। राम-नाम काशीमें मरनेवाले प्राणीकी मुक्तिका हेतु होता है। राम-नामके प्रभावसे अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। राम-नाम संजीवनी शक्ति है। रामनामकी महिमा अपरम्पार है। आप भी प्रेम-मुदित मनसे एक राम नामका सदा-सर्वदा जप करो।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

दोनोंको ही लाभ है न!

स्त्रीमें धर्मका संस्कार रहनेसे पुरुषका तो बड़ा भारी लाभ है। यदि स्त्री धर्मात्मा हो, तो वह परपुरुषकी ओर देखे नहीं। धर्मात्मा स्त्री पतिव्रता होगी। वह अपने पतिदेवके प्रति वफादार रहकर खूब प्रेमसे उनकी सेवा करेगी। लेकिन, ये पुरुष ऐसे मूर्ख होते हैं कि उन्हें अपनी भलाईकी इतनी-सी बात भी समझमें नहीं आती है कि यदि स्त्री धर्मात्मा रहेगी, तो वह अपने पतिके प्रति कितनी सच्ची रहेगी। पुरुषको स्वयं भी धर्मात्मा होना चाहिए और स्त्रीको भी धर्मात्मा रखना चाहिए। स्त्रीका कितना बड़ा लाभ है कि उसका पुरुष इतना धर्मात्मा हो कि परस्त्रीकी ओर देखे ही नहीं। धर्मात्मा होनेमें तो पुरुष और स्त्री दोनोंको ही लाभ-ही-लाभ है।

नारायण! पुरुष स्वयं तो अधर्म करते हैं और अपने साथीके धर्मका विरोध करते हैं। परिणाम सुनिश्चित है। पीछे करते हैं शिकायत। यह कोई बुद्धिमानीकी बात नहीं है। स्त्री-पुरुष दोनोंको मिलकर धर्मात्मा होना चाहिए। दोनोंको मिलकर भगवान्‌की सेवा-पूजा-अर्चना करनी चाहिए। दोनोंको मिलकर भगवान्‌की भक्ति-भावना-उपासना करनी चाहिए। इससे परस्पर श्रद्धा-विश्वासकी वृद्धि होती है। विश्वास ही प्रेमका जनक है। सेवा प्रेमकी सहचरी है। जहाँ धर्म-उपासना भक्ति-मूलक विश्वास-प्रेम-सेवा हो, वहाँ सुख-शान्ति-आनन्दका होना स्वाभाविक है। सीताराम! धर्मात्मा होनेमें तो स्त्री-पुरुष दोनोंको ही लाभ है न!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽ!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

छोटा नहीं गिनना चाहिए

एक बार मैंने देखा-एक आदमीके नाकके सिरेपर जरा-सी सरसोंके दानेके बराबर फुन्सी हुई। कुछ ही समयमें उसकी नाक फूलकर आमके बराबर हो गयी। देखते-ही-देखते उसका सार-का-सारा मुँह फूल गया। पल-भरमें कोंहड़ेके बराबर हो गया-काला पड़ गया। डॉक्टर लोग चिकित्सा करते ही रह गये। वह चार दिनके अन्दर मर भी गया। यदि रोग थोड़ा भी आवे, तो उसका तुरन्त निदान करना चाहिए। उसको कभी भी छोटा नहीं गिनना चाहिए। थोड़ा-सा रोग भी बड़ा होकर जानलेवा हो सकता है। शीघ्रातिशीघ्र रोगका इलाज करवाना चाहिए। अपनी ओरसे सदा सावधान रहना चाहिए।

नारायण! अकेला शत्रु भी बड़ा तेजस्वी होता है। यदि बलवान शत्रु अकेला भी हो, तो उसको कभी भी छोटा करके नहीं समझना चाहिए। आगकी एक चिन्गारी भी धधकती हुई अग्निज्वालाका रूप ग्रहण करके सब-का-सब जलाकर राखका ढेर कर सकती है। यदि साँपका छोटा-बच्चा भी डँस दे, तो उसके विषसे आदमी मर सकता है। छोटा-से-छोटा पापकर्म भी व्यक्तिके सम्पूर्ण जीवनको दुःख-विषादसे विषाक्त कर सकता है। अतः भाई मेरे! सावधान रहना चाहिए। रिपु, रुज, पावक और पापको कभी भी छोटा नहीं गिनना चाहिए।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

धर्म-संकट

एक बारकी बात है। जब रावण हारने लगा और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पर उसकी कुछ भी नहीं चली, तब उसने राक्षसी माया फैलायी। रावणने सब राक्षसोंको आज्ञा दे दी कि तुम लोग बड़ी-बड़ी सींगवाली गाय बन जाओ और जाकरके वानर सेना-सहित रामको मार डालो। राक्षस गाय बनकर आये। अब तो राम और लक्ष्मण धनुष बाण लिये चुपचाप खड़े हो गये। गायों पर बाण कैसे चलावें? धर्म-संकट खड़ा हो गया। राक्षसोंको अच्छा मौका मिला। बड़ी-बड़ी सींगोंवाली गायोंके रूपमें वे वानर-सेनाका संहार करने लगे। उस समय श्रीविभीषणजीने आकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा-'महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं? इस तरह चुपचाप खड़े रहनेसे तो आपकी हार हो जायेगी।' श्रीरामचन्द्रजीने कहा-'विभीषण! क्या करें? गायोंपर बाण कैसे चलावें?' विभीषणने कहा-'महाराज! आप 'व्याघ्रबाण' चलायें।' अब श्रीरामने व्याघ्राकार बाण चलाये। वे बाण बाघ बन-बनकर गायोंकी ओर दौड़े। गायोंको विज्ञानका ज्ञान तो था नहीं। वे बाघकी शक्ल देखकर ही भागीं। सब-की-सब गायें भयभीत होकर पुनः अपने राक्षस रूपमें आ गयीं। तब भगवान् रामने राक्षसोंको मारा।

'राक्षसाः कामरूपिणः' राक्षस कामरूप होते हैं। **'कामरूप खल।'** निशाचर कामरूप होते हैं। जब जो मनमें आता है, तब वही बन जाते हैं। एक-दो नहीं; बल्कि, अनेकानेक रूप धारण करके राक्षसी माया फैलाते हैं। इस मायाको समेटनेके लिए संत-कथित-युक्तिका अनुसरण अत्यन्तावश्यक है।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

सिर्फ एक आप

एक राजा था। उसकी कई रानियाँ थीं। एक बार वह विदेश गया। वहाँसे उसने अपनी रानियोंके पास सन्देश भेजा कि जिसको जो वस्तु चाहिए, वह उस वस्तुका नाम लिखकर भेजे। सभी रानियोंने अपनी-अपनी पसन्दकी वस्तुका नाम लिखकर राजाको भेज दिया। केवल एक रानीने अपने पत्रमें सिर्फ एककी संख्या '1' लिखी और पत्र भेज दिया। जब राजा विदेशसे लौटा, तब उसने प्रत्येक रानीके घर उसकी पसन्दके अनुसार मँगायी हुई वस्तु भेज दी। राजा स्वयं उस रानीके घर गया, जिसने सिर्फ एककी संख्या लिखकर भेजी थी। वहाँ जाकर राजाने रानीसे कहा-'प्रिये! एकका अर्थ मेरी समझमें नहीं आया। कल्याणी! तुम्हें क्या चाहिए था?' रानीने मधुर स्वरमें कहा-'हृदयेश्वर! जो मुझे चाहिए था, सो मुझे मिल गया। मुझे किसी वस्तुकी चाह नहीं थी। मुझे सिर्फ एक आपकी चाह थी। आप मुझे मिल गये। अब मुझे सब कुछ मिल गया।'

मैंने अपने बचपनमें यह कहानी सुनी थी। मुझे, सचमुच, यह कहानी बहुत अच्छी लगी थी। इस कहानीका अभिप्राय अत्यधिक हृदयस्पर्शी है। सिर्फ एक आप और कुछ भी नहीं। है कि नहीं? हाँ! है! हो!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

अकेले आप ही पसन्द

महाभारत-युद्धमें दुर्योधन और अर्जुन दोनोंने ही श्रीकृष्णसे सहायता माँगी। दुर्योधन द्वारिकाके महलमें उस समय पहुँचा, जिस समय श्रीकृष्ण सुख-चैनकी मुद्रामें सो रहे थे। श्रीकृष्णको सोता देखकर दुर्योधन उनके सिरहानेकी ओर ऊँचे आसन पर जाकर बैठ गया। अर्जुन भी तभी पहुँचा। श्रीकृष्णको सोता हुआ देखकर वह उनके चरणोंकी ओर नीचे आसन पर बैठ गया। जब श्रीकृष्णकी आँख खुली, तब उनकी दृष्टि अर्जुन पर पड़ी। नारायण! भगवान् की दृष्टि विनयी पर ही सबसे पहले पड़ती है। सहायताका प्रस्ताव उठा। श्रीकृष्णने अर्जुनसे पूछा-'क्या चाहते हो?' दुर्योधन बीचमें ही बोल पड़ा-'मैं पहलेसे ही आकर बैठा हूँ।' श्रीकृष्णने कहा-'यह ठीक है कि तुम यहाँ पहलेसे ही आकर बैठे हो; परन्तु, मैंने तो पहले अर्जुनको ही देखा है। और फिर, अर्जुन तुमसे छोटा भी है। अतः अर्जुनको ही पहले माँगनेका मौका मिलना चाहिए।' श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा-'देखो! एक ओर बिना अस्त्र-शस्त्रके अकेला मैं रहूँगा और दूसरी ओर यादव-कुलके सभी वीरोंके साथ एक अक्षौहिणी सेना रहेगी। तुम्हें दोनोंमें क्या पसन्द है?' अर्जुनने कहा-'मुझे अकेले आप ही पसन्द हैं। बिना किसी अस्त्र-शस्त्रके अकेले आप मेरी ओर

रहिये।' अर्जुनके इस निर्णयसे दुर्योधनको बड़ी प्रसन्नता हुई कि बिना माँगे ही उसकी इच्छा पूरी हो गयी। उसे सभी यादव-वीरों सहित इतनी बड़ी सेना मिल गयी। अर्जुन तो प्रसन्न था ही। उसको तो अकेले श्रीकृष्ण ही चाहिए थे।

जब युद्ध प्रारम्भ होनेका समय आया, तब अर्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा-'बिना अस्त्र-शस्त्रके रहोगे ना?' श्रीकृष्णने कहा-'हाँ! मैं अकेला ही रहूँगा।' अर्जुनने कहा-'तब आप मेरे रथके सारथि बन जाओ। मेरे रथके घोड़ोंका संचालन करो।' अर्जुनने अपने शरीर-रूपी रथका, इन्द्रिय-रूपी घोड़ोंका और मन-रूपी लगामका संचालन बुद्धि-रूपी सारथिके अधिष्ठाता, अन्तर्यामी, प्रेरक श्रीकृष्णके हाथोंमें समर्पित कर दिया। अर्जुनने अकेले श्रीकृष्णका वरण किया। अनन्य-वरण। सेना नहीं चाहिए, नाना बहादुर नहीं चाहिए। केवल श्रीकृष्ण चाहिए। जीवन-रथके आश्रय-प्रेरक-संचालक निर्वाहक-उद्देश्य-शरण्य केवल श्रीकृष्ण ही हों।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

सच्चा अनुभव

एक बड़े अच्छे महात्मा थे। उन्होंने नर्मदाकी घाटीमें रहकर चालीस वर्षोंतक योगाभ्यास किया था। उनके ब्रह्मरन्ध्रसे लेकर आज्ञाचक्र तक एक ज्योतिर्मयी रेखा बन गयी थी। मैं उनके पास गया। वे नंगे रहते थे। मैंने उनसे कहा–'महाराज! मुझे भगवान्के प्रति समर्पित कर दीजिये!' वे हँसे। हँसते-हँसते बोले–'गुरु! ऐसी कौन-सी चीज है, जो भगवान् की शरणमें नहीं है? जरा गौरसे सोचो। ईश्वरकी रोशनीके सिवाय और कुछ भी तो नहीं है। ईश्वरकी रोशनी ही सबको प्रकाश दे रही है। ईश्वरकी रोशनीमें सब चमक रहा है। दिखानेवाला भी वही है और दीखनेवाली वस्तु भी वही है। उपादान भी वही है और उपादेय भी वही है। अच्छा! गुरु! अब तुम जाओ और फिर सोच-विचारकर आना कि कौन-सी ऐसी चीज है, जो भगवान् न हो और भगवान्में समर्पित न हो? तुम चाहो तो घण्टेके बाद आना या दो घण्टेमें आना अथवा आज दिन भरमें कभी भी आना। तुम्हारी इच्छा हो, तो कल आना या परसों आना अथवा मास-पर्यन्तमें कभी भी आना। जब तुम्हारी मौज हो, तब तुम आना; परन्तु, सोच-विचारकर आना कि ऐसी कौन-सी चीज है, जो ईश्वरकी शरणमें नहीं है?'

मैंने सादर-सप्रेम उनके परमपावन पादारविन्दोंमें प्रणाम-निवेदन किया और वहाँसे प्रस्थान किया। अब मैं आकर सोचने लगा कि जब पृथिवी भगवान्‌की है, तब सोना, चाँदी, हीरा, मोती भी भगवान्‌का हो गया। जब पृथिवी भगवान्‌की है, तब अन्न भी भगवान्‌का ही हो गया। जब पृथिवी भगवान्‌की है और अन्न भी भगवान्‌का ही है, तब अन्नसे बना शरीर भी भगवान्‌का ही है। जिसकी मिट्टी है, उसीका तो यह शरीर है। मैं इसे मेरा क्यों मानता हूँ? मेरा घर-द्वार भी भगवान्‌का ही हुआ। अच्छा! पैसेमें जो माटी है, सो? वह भी उसीकी है। जो वजन है, सो? वह भी उसीका है। मेरा तो कुछ भी नहीं है। सबकुछ भगवान्‌का ही है।

अब मैं पुनः विचार करने लगा कि पानी भी भगवान्‌का ही है। जिसका पानी है, उसीका खून है। उसीकी हरियाली है। उसीका रस है। नीबूमें भी उसीका रस है और आममें भी उसीका रस है। फिर, मैं यह 'मेरा-मेरा' क्या कर रहा हूँ? अच्छा! आग भी तो भगवान्‌की ही है। तेज भी उसीका है। जब तेज और तेजसे बना सबकुछ भगवान्‌का है, तब 'टेम्परेचर' किसका है? वह भी उसका है। अच्छा! वायु भगवान्‌की हो और साँस मेरी हो, यह कोई बुद्धिमानीका विचार नहीं है। जब वायु भगवान्‌की है, तब साँस भी भगवान्‌की ही है। अच्छा! आकाश भगवान्‌का हो और नाकके भीतरका छेद, मुँहके भीतरका छेद, रोम-रोमका छेद-आकाश मेरा हो, यह कोई न्यायका विचार है? जब आकाश भगवान्‌का है, तब नाक-मुँहके भीतरका आकाश भी उसीका ही है। प्रत्येक रोम-छिद्रके भीतरका आकाश उसीका है। सूर्य उसीका है। चन्द्रमा उसीका है। सम्पूर्ण व्यष्टि-समष्टि-सृष्टि भगवान्‌की ही है। न मैं कुछ हूँ और न ही मेरा कुछ है। 'मैं-मैं-मैं' और यह 'मेरा-मेरा-मेरा' केवल अज्ञान है। अभिमानके सिवाय 'मैं' 'मेरा' कुछ नहीं है। अज्ञान-जन्य झूठे अभिमानके कारण ही 'मैं-पना' और 'मेरा-पना' मन-बुद्धिको भ्रममें डाले हुए है। 'निरहं-निर्मम' होना ही सच्चा जीवन है।

दूसरे दिन मैं उन महात्माके पास गया। उनके परम-पवित्र श्रीचरणकमलोंमें सविनय-सादर-सप्रेम-वन्दन करके उन्हींके पास बैठ गया। उन्होंने कृपा कटाक्षसे मेरी ओर निहारा और हाथकी चेष्टासे कुशल-मंगल पूछा। मैंने भी उन्हें प्रेम भरी नजरोंसे देखा और मुस्करा दिया। तब उन्होंने हँसते-हँसते अपनी मस्तीसे पूछा-'क्यों गुरु? कुछ मिला?' मैंने कहा-'महाराज! खूब सोच-विचार करनेके बाद भी मुझे ऐसी कोई चीज नहीं मिली, जो वस्तुतः ईश्वर न हो। पंचभूतोंका और पाञ्चभौतिक वस्तुओंका क्रमपूर्वक विचार करनेपर भी मुझे ऐसी कोई चीज नहीं मिली, जो ईश्वरकी शरणमें न हो। समस्त व्यष्टि-समष्टि सृष्टिका विचार करनेके उपरान्त भी मुझे ऐसी कोई चीज नहीं मिली, जो ईश्वर समर्पित न हो।'

उन्होंने मेरी ओर प्रेमपरिपूर्ण चितवनसे देखा। अत्यन्त प्रसन्न मुख-मुद्रा थी। बस! फिर क्या कहना? उनकी असीम-अहैतुकी कृपा-अनुग्रह-दृष्टि हुई। वे धीर-गम्भीर-शान्त-प्रसन्न वाणीमें बोले-'वत्स! देखो! मैं ईश्वरका नहीं हूँ; यह एक अज्ञान है। मैं ईश्वरकी शरणमें नहीं हूँ, यह एक भूल है। मैं ईश्वरके प्रति समर्पित नहीं हूँ, यह एक भ्रान्ति है। असलमें, ईश्वरकी शरणमें होना नहीं है; अपितु, ईश्वरकी शरणके बारेमें जो अज्ञान है, वह दूर करना है। ईश्वरकी शरणमें न होनेकी भ्रान्तिको निवृत्त करना है। ईश्वरके प्रति अशरणकी भूलको सुधारना मात्र है। बेटा! शरण कोई क्रिया नहीं है कि हाथ जोड़ लिया और शरण हो गये। शरण कोई वचन नहीं है कि वाणीसे बोल दिया और शरण हो गये। शरण कोई भाव नहीं है कि यदि हम बनाये रखें, तो शरण हो गये। देखो! शरण कोई क्रिया-वचन-संकल्प-भावना नहीं है। शरण तत्त्व है। शरण एक ज्ञान है-यथार्थका ज्ञान है। शरण एक बोध है-सत्यका बोध है। वत्स! शरणागति एक सच्चा अनुभव है। अच्छा! अब तुम जाओ और इस यथार्थ सत्य ज्ञानका सच्चा अनुभव करो!'

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

शरण

'शरण' शब्द 'शृ हिंसायां' धातुसे बनता है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें सबका–यहाँ तक कि अपना भी संहार हो जाता है। केवल भगवान् रह जाते हैं।

मैं मर जाऊँ, तूँ प्रभु जीवै।'

हे प्रभु! मैं मर जाऊँ। तुम जिओ!' बहुत ही कठोर शब्द है। है ना? इसको दूसरी तरहसे समझो। सब रूपमें भगवान् ही भगवान् हैं। भगवान्के अतिरिक्त कुछ प्रतीत ही न हो। उनके अतिरिक्त जो कुछ बाकी रहता है, सबकी हिंसा हो जाती है। सब मर जाता है। जब एकमात्र भगवान् रह जाते हैं, तब उसका नाम शरण होता है।

हम देखते हैं कि गीतामें भगवान्के अनेक नामोंमें–से एक नाम शरण भी है।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।।

इस श्लोकमें सब सम्प्रदायोंके नाम हैं। इसमें द्वादशात्मा भगवान्ने अपनी बारह विशेषताएँ बतायी हैं। आप गिन लेंगे, तो मिल जायेंगी। इसमें एक विशेषता यह भी बतायी कि 'शरण मैं ही हूँ।' गीतामें 'शरण' शब्दका उपयोग स्वयं भगवान्के अर्थमें किया गया है। शरणका अर्थ है–स्वयं भगवान् ।

'अमर-कोष'में 'शरण' शब्दकी व्याख्यामें कहा–'**शरणं गृहरक्षित्रोः**'। 'गृह और रक्षकका नाम शरण होता है।' जिस घरमें हम रहते हैं, उसका नाम शरण है। जो प्रभु हमारे रक्षक हैं, उनका नाम शरण है। यदि घर अलग हो और रक्षक अलग हो, तो रक्षककी कीमत घट जाती है। रक्षक केवल एक पहरेदार ही रह जाता है। यदि घर और घरका मालिक मैं और उसका रक्षक कोई दूसरा होता है, तो कीमत घट जाती है; क्योंकि, दोनों अलग-अलग होते हैं। जहाँ घर और रक्षक दोनों एक होते हैं, वहाँ कीमत बढ़ जाती है। जब घर, जिसमें हम रहते हैं, हमारा रक्षक होता है, तब उसका नाम 'शरण' होता है।

बुद्धिमान लोग बुद्धिकी शरण लेते हैं-

बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणा फलहेतवः। (गीता)

'बुद्धिमें अन्तर्यामी रूपसे परमात्मा रहता है। वही बुद्धिमें बैठकर उसको चलाता है।'-

'धियो यो नः प्रचोदयात्' (वेद)।

'हमारी बुद्धिमें परमात्माका प्रकाश होता है।'-

'आत्मबुद्धिप्रकाशम्।' (उपनिषद्)

जब कभी आपके पास कोई भी सलाह लेनेके लिए आये, तब आपको उसको कहना चाहिए-'देखो! भगवान्ने तुमको भी बुद्धि दी है। तुम स्वयं सोचो-समझो और फिर जो उचित हो, सो करो!' आपको अपनी बुद्धि उसपर लादनी नहीं चाहिए; बल्कि, उसको उसकी अपनी बुद्धिको उपयोगमें लेनेकी सलाह देनी चाहिए। इसे इस तरह समझो। एक विद्यार्थी किसी सवालका हल पूछनेके लिए मास्टरके पास गया मास्टरने उसे हल बता दिया। अब भला बताओ! इससे विद्यार्थीका हित हुआ कि अहित? केवल हल बता देनेसे तो विद्यार्थी हल ही जान पाया। तरीका तो जान नहीं पाया। हित तो तब होता, जब मास्टर विद्यार्थीके सामने उस सवालका हल निकालकर बताता कि यह इस तरह किया जाता है। इससे विद्यार्थी सवालका हल भी जान जाता और हल निकालनेका तरीका भी जान जाता।

आजकल तो क्या कहना है? लोग हमारे घण्टे भरके व्याख्यानका मतलब केवल एक सेकेण्डमें ही निकाल लेते हैं। वे हमसे कहते हैं-'स्वामीजी! आजके प्रवचनका सार तो यही है ना कि....।' भाई मेरे! सिर्फ सार ही नहीं अपितु व्याख्यानकी रीति भी जाननी चाहिए। केवल निष्कर्ष ही नहीं अपितु प्रवचनकी प्रक्रिया भी जाननी चाहिए। प्रक्रियामें लक्ष्यका चिन्तन होता है। चिन्तन-धारा लक्ष्यकी सिद्धिके लिए प्रवाहित होती है। वेदान्त-सिद्धान्तमें इस चिन्तन-धाराका प्रवाह गुरुकी शरणमें भी है। 'निरन्तर-चिन्तन'-इस शरणका रूप होता है। परन्तु; अभी इसमें भी कुछ बाकी है। जानते हो क्या? अपनी बुद्धिकी शरण बाकी है।

गुरुकी शरणागतिमें पूर्णता तब आती है, जब शिष्य कहता है-

'नान्यत् किञ्चिद् विजानामि त्वमेव शरणं मम।'

'हे गुरुदेव! मेरी बुद्धि विकुण्ठित हो गयी है। तलवारकी धार मोटी पड़ गयी है। मेरे पास जितनी भी युक्ति थी, सब समाप्त हो गयी। मेरी समझमें कुछ भी नहीं आता है। मुझे कुछ भी नहीं सूझता है। अब आपके सिवाय मेरे लिए और कोई आश्रय नहीं है। मैं केवल आपकी शरणमें हूँ। आप ही मेरे एकमात्र शरण्य हैं।'

जबतक जीव यह नहीं कहता है कि-

'त्वमेव शरणं मम'

तबतक ईश्वर भी यह नहीं कहता है कि-

'मामेकं शरणं व्रज।'

जब भगवान्‌के सिवाय अन्य कोई आश्रय नहीं रहता है, तब भक्तपर भगवान्‌की कृपा बरसती है। जब भक्त अनन्य भावसे भगवान्‌की शरण ग्रहण करता है, तब उसे भगवान्‌का प्रसाद प्राप्त होता है। अनन्य शरणागतिके बिना भगवान् भी अपनी शरणमें स्वीकार नहीं करते हैं। जब भगवान् अपनी शरणमें स्वीकार कर लेते हैं, तब तो पूछना ही क्या है? भगवान्‌के कृपा-प्रसादसे भक्तका मोह नष्ट हो जाता है। उसे निरन्तर स्मृतिरूप तत्त्व-ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उसके मनमें कोई सन्देह नहीं रह जाता है। वह भगवान्‌की आज्ञाका पालन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करता है। भक्तका जीवन भगवान्‌का इच्छा-यंत्र मात्र बन जाता है। जहाँ केवल भगवान्-ही-भगवान् हैं, वहाँ अमङ्गलकी कोई शङ्का नहीं है। जहाँ भक्तका उत्साहपूर्ण अभियान है और भगवान् भक्तके जीवन-साधनके प्रेरक, प्रवर्त्तक, निर्वाहक और फलदाता हैं, वहाँ निश्चित रूपसे लक्ष्मीका निवास है, विजय-वैभव है और शाश्वत नीति है। जहाँ भक्तकी भगवान्‌के प्रति अनन्य-शरण-वरण है, वहाँ सचमुच सम्पूर्ण मङ्गल-सुख और शान्तिका निवास है।

अब हम आपको अपने बारेमें एक बात सुनाते हैं। यदि कोई हमारी शरणमें आता है, तो हम उसकी अनन्यताके बारेमें पता लगाते

हैं। जब कोई हमसे सलाह लेनेके लिए आता है तब हम उससे कहते हैं-'देखो! तुम अपनी बुद्धिसे सोच-विचार कर काम करो। तुम स्वयं सोच लो, समझ लो और अपनी जिम्मेवारीसे विचार करके काम करो!' जानते हो, यह क्या हुआ? यह हुआ-'**बुद्धौ शरणमन्विच्छ।**' अपनी बुद्धिकी शरण लो। अच्छा! यदि वह बोलता है-'महाराज! मेरी बुद्धि काम नहीं करती है। मेरी समझमें कुछ नहीं आता है।' तो, हम उसको कहते हैं-'देखो! एक बहुत समझदार सज्जन फलाँ जगह रहते हैं। तुम उनके पास चले जाओ। उनसे सलाह ले लो। भला बताओ! यह क्या हुआ? यह हुआ-'**तमेव शरणं गच्छ।**' उसी अन्तर्यामीकी शरणमें जाओ, जो तुम्हारे हृदयमें रहकर; बुद्धिका भी अन्तर्यामी रहकर; तुम्हें प्रेरणा देता है और सबको प्रेरणा देता है। यदि इतना सब कहनेपर भी उसे सन्तोष नहीं होता है और वह कहता है-'महाराज! आपके सिवाय मेरे लिए और कोई आश्रय नहीं है। मैं तो आपकी शरणमें ही आया हूँ। मुझे किसी अन्यके पास जानेकी चाह ही नहीं है। पूछने जानेका तो प्रश्न ही नहीं उठता है। बस! मेरे लिए तो केवल आप ही एकमात्र शरण्य हैं।' तो, हम कहते हैं-'अच्छा! ऐसा है? तुम तो अनन्य-शरणागति-भावसे हमारे पास आये हो। देखो! नारायण! अब तुम उदास-निराश मत होओ। अब तुम दुःखी मत होओ। तुम एकदम प्रसन्न रहो। तुम बिलकुल बेफिक्र होकर आनन्दमें रहो। हम अभी तुम्हारी फिक्रको फाँककर फकनी कर देते हैं। जाओ! निश्चिन्त होकर मौजसे रहो। सुखपूर्वक विचरण करो। अब तुम मेरे हो। अब तुम्हें काहेका डर और काहेकी चिन्ता?' यह हुआ-'**मामेकं शरणं व्रज।**' एक मात्र मेरी शरणमें आ जाओ।

असलमें, अनन्य-शरण-ग्रहण किये बिना ईश्वरकी कृपा-अनुग्रह-शक्तिका पूर्ण प्राकट्य नहीं होता है। पूर्ण रूपसे शरणागत होनेपर ही ईश्वर-कृपाकी छत्र-छायाका साक्षात् अपरोक्ष अनुभव होता है।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

ईश्वर-शरणागतिका अधिकारी

देखो! एक बात सुनाता हूँ। है तो गाली देनेवाली बात; परन्तु फकीरी है। आप लोग सभ्य हैं। एक साधुके मुँहसे गालीकी बात सुनना पसन्द नहीं करेंगे। आप बुरा मत मानना। केवल दृष्टान्त रूपमें यह फकीरी हकीकत सुनाता हूँ।

मैं एक महात्माके पास था। वे बड़े सिद्ध पुरुष थे। उनके पास अनेक लोग आशीर्वाद और वरदानके लिए आया करते थे। एक बार एक स्त्री आयी। उसके साथ और स्त्रियाँ भी थीं। उसके घरके लोगोंने उस स्त्रीको लाकर महात्माके चरणोंमें गिराया। उसने हाथ जोड़कर कहा-'महाराज! मेरी गोद भर दो! मुझे पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हो! मेरे घरके आँगनमें बाल-गोपाल नृत्य करे! आप कृपा करके मुझे औलादका सुख दीजिये!' उसकी प्रार्थना सुनकर वे महात्मा मुझसे बोले-'देखो! इस स्त्रीको दो घूँसा मारो और यहाँसे धक्के मारकर निकाल दो!' मैं तो देखता ही रह गया। महात्माकी बात सुनकर एकदम भौंचक्का होकर खड़ा रहा। मेरी समझमें यह बात नहीं आ रही थी कि इस बेचारी स्त्रीकी क्या गलती है? इस स्त्रीने तो श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर महात्माके चरणोंमें प्रणाम किया है और पुत्र-प्राप्तिका आशीर्वाद प्रदान करनेकी प्रार्थना की है। यह महात्मा इस स्त्री बेचारीका भक्ति-भाव तो देखते नहीं हैं और बोलते हैं कि इसको मार-मारकर बाहर निकाल दो। भला बताओ! यह भी कोई बात हुई? नारायण! वह महात्मा बोल पड़े! सिद्ध पुरुष तो थे ही। मेरे अन्तरतम मनको तुरन्त समझ गये और बोले-'देखो! यह स्त्री बेचारी नहीं है। यह रात्रिको तो पर-पुरुषसे बच्चा माँगने जाती है और दिनमें महात्माके पास आती है। गैर-मर्दसे बच्चा माँगती है रातके समय, और महात्मासे बच्चा माँगती है, दिनके समय। यह तो व्यभिचारिणी स्त्री है। यह भक्तिमती नहीं है। इसको तुरन्त यहाँसे भगाओ!'

नारायण! आपके ध्यानमें यह गालीकी बात आयी कि नहीं? ईश्वरकी शरणागतिमें अनन्य-गति होना अत्यन्तावश्यक है। अपने हृदयमें यह आस्था सर्वथा नहीं रहनी चाहिए कि ईश्वरके सिवाय अन्य कोई मेरी रक्षा करेगा। ईश्वरके सिवाय किसी दूसरेका सहारा न हो। दोनों हाथ छोड़ दो। जब द्रौपदीने अपने दोनों हाथ ऊपर उठा लिये; अपनी साड़ीकी पकड़ छोड़ दी; अपना बल छोड़ दिया; और, आर्त-हृदयसे कृष्णको पुकारा, तब तुरन्त कृष्णके वस्त्रावतारका प्राकट्य हुआ। जो कृष्णके चरणकी शरण ग्रहण करे, वह भला भरी सभामें नंगा कैसे हो सकता है? शरणागत कदापि बेइज्जत-बेआबरू नहीं हो सकता है। जब तक द्रौपदीको अपना बल था और 'कृष्ण-कृष्ण' भी पुकारती थी, तब तक कृष्ण नहीं आये। जब द्रौपदीने अपना बल छोड़ दिया और पूर्ण-समर्पण भावसे कहा-'कृष्ण! अब तुम ही जानो। यदि तुम चाहते हो, तो हो जाने दो नंगी।' तब कृष्ण साड़ी बनकर द्रौपदीसे लिपट गये।

जब ल्यों गज बल अपनो बरत्यो, नेक सर्यो नहीं काम।
निर्बल होय बलराम पुकार्यो, आये आधे नाम।।

केवल ईश्वरका भरोसा हो। दूसरेका भरोसा न हो। यदि राजाका, सेठका, पुलिस इत्यादिका भरोसा होगा, तो शरणागति कहाँसे होगी? देखो! शरणागतिका अधिकारी वह है, जो अनन्य-भावसे अपने ईश्वरके प्रति आश्रित हो। अनन्याश्रित व्यक्ति ईश्वर-शरणागतिका अधिकारी है।

स्वयं तो ईश्वरके अतिरिक्त किसी अन्यकी शरण न ले और स्वयंको किसी अन्यका शरण्य न बनावे। शरणागतिका अधिकारी वह है, जो स्वयं तो ईश्वरके सिवाय किसी दूसरेका भरोसा न करे और स्वयंको किसी दूसरेका भरोसा न बनावे। यह नहीं कि एक हाथ ईश्वरको पकड़ा दिया; एक हाथसे बच्चेको पकड़कर छातीसे लगाया; और फिर कहा-'हे ईश्वर! तुम मेरा हाथ पकड़कर ले चलो और मैं बच्चेका हाथ पकड़ता हूँ। तुम मेरी रक्षा करो और मैं बच्चेकी रक्षा करूँगा।' यह नहीं कि सोना-चाँदी-नोट इत्यादि सब तो कमरमें बाँध

लिया और फिर बोले-'हे ईश्वर! तुम मेरी रक्षा करो और साथ-साथ मेरे सोने-चाँदी-नोट-बण्डलकी भी।' ऐसा करनेसे शरणागतिमें विघ्न आ जाता है। शरणागतिमें अकिंचन होना चाहिए। 'मेरा' कुछ नहीं रहना चाहिए। 'मेरा कुछ नहीं और तेरे सिवाय मेरा कोई दूसरा सहारा नहीं'-ये दोनों बातें होनेपर ही ईश्वर-शरणागतिका अधिकारी होता है।

अब तीसरी बात यह है कि शरणागतिमें देर नहीं करनी चाहिए। **विलम्बाक्षण**। ऐसे नहीं सोचना चाहिए कि ईश्वरके मार्गमें चलनेमें जल्दी क्यों करना? यदि कार्त्तिकमें नहीं, तो माघमें चलेंगे। और फिर, माघमें नहीं हुआ, तो वैशाखमें चलेंगे। ईश्वरके मार्गमें चलनेमें विलम्ब नहीं होना चाहिए। उसी समय-तत्क्षण ईश्वरकी शरणमें हो जाना चाहिए। जब एक मिनटकी देर करना भी भारी मालूम पड़े, तब वह व्यक्ति शरणागतिका अधिकारी होता है।

नारायण! ईश्वर-शरणागतिका अधिकारी होनेके लिए तीन बातोंका होना अनिवार्य है। अनन्य-गति; अकिञ्चनभाव; और, तत्परता-व्याकुलता। जिसमें अन्य-गति हो कि मैं ज्ञान-योग-भक्ति-धर्मादिसे मुक्ति प्राप्त कर लूँगा; जिसमें यह शक्ति हो कि मैं अपनी वस्तु-सामग्रीकी रक्षा कर लूँगा; और, जिसमें यह विलम्ब-स्वीकृति हो कि यदि अब नहीं, तो तब सही; वह ईश्वर-भजनका अधिकारी नहीं हो सकता है। देखो! शरणागतिका यह मन्त्र है कि अपने हृदयमें यह विश्वास नहीं हो कि धर्म मेरी रक्षा करेगा; क्योंकि, अपने जीवनमें धर्म तो बहुत कम है और अधर्म ही ज्यादा है। अपने हृदयमें यह विश्वास नहीं हो कि ज्ञानसे मुझे मुक्ति मिलेगी; क्योंकि, ज्ञान तो अभी हुआ ही नहीं है। ईश्वर-चरणारविन्दकी भक्ति भी नहीं है। दूसरे किसीका सहारा नहीं है। अपने हृदयमें यह भाव हो कि मैं अकिञ्चन हूँ। हे शरण्य! हे शरणागतवत्सल! हे प्रभो! अब मैं तुम्हारे चरणारविन्दोंकी शरण ग्रहण करता हूँ-

'श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये।'

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

ईश्वर आवश्यक क्यों?

नारायण! यह बात जीवनमें ध्यान देने लायक है कि कोई भी निर्दोष नहीं होता है। जो अपना दोष देख नहीं सकता है, वह या तो इतना मूर्ख है कि दोषको समझता नहीं है और या तो इतना पाखण्डी है कि अपने दोषको जानते हुए भी छिपानेका प्रयत्न करता है। सृष्टिमें जितना भी स्थावर-जङ्गम पैदा हुआ है, सबमें दोष है। ब्रह्मामें भी दोष है, जिसके कारण उनका पाँचवाँ सिर काटा गया। विष्णुमें भी दोष है, जिसके कारण उन्हें श्मशानमें वृन्दाकी चितापर बैठकर धूल लपेटना पड़ा। शङ्करमें भी दोष है, जिसके कारण उन्हें देवीका मुर्दा लेकर वन-वनमें भटकना पड़ा। ये सारी कथाएँ पुराणोंमें मिलती हैं। जो व्यक्ति जन्म लेता है, वह सर्वथा निर्दोष हो, यह सम्भव नहीं है। थोड़ी-सी माया सबके साथ लिपटती है, चाहे वह देवता हो कि दानव हो। वेदान्तकी दृष्टिसे तो ईश्वर भी मायाकी उपाधिसे ही ईश्वर होता है। यदि उसमें माया न हो तो ईश्वरका ईश्वरत्व नहीं रहेगा; सिर्फ ब्रह्मत्व ही रहेगा।

आपका जीवन सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकता है। अतः आपको अपने दोषका-पापका फल-दुःख भोगना ही पड़ेगा। **'पा' धातुसे 'प' प्रत्यय** होता है। उसका अर्थ होता है-जिससे कोई रक्षा न कर सके। पाप-फल दुःखसे कोई बचा नहीं सकता है। अपने पापका फल दुःख अवश्य भोगना पड़ता है। '**अवश्यमेव भोक्तव्यं**'। यह संविधान है। अच्छा! ठीक है कि यह संविधान है; परन्तु, संविधानके ऊपर भी कोई है कि नहीं? हाँ! है तो सही। ईश्वर है। नारायण! ईश्वर है, यह तो ठीक है; लेकिन, आपके मनमें ईश्वरके प्रति आस्था है कि नहीं? यदि आपके मनमें ईश्वरके प्रति विश्वास नहीं है, तो आप रोते ही रह जायेंगे और आपको पापसे मुक्त करनेवाला कोई भी नहीं होगा।

सचमुच, मनुष्य स्वयमेव पाप छोड़ नहीं सकता है। यह मनुष्यकी विवशता है-मजबूरी है। यहाँ तक कि प्रायश्चित करनेमें भी पाप हो जाता है। तब? पापसे छुड़ानेवाला कोई चाहिए। केवल ईश्वरमें ही पापको छुड़ानेका सामर्थ्य है। हाँ! जो मनुष्य यह सोचता है कि वह परमात्मासे

एक हुए बिना निष्पाप हो गया, वह भ्रममें रहता है। वह भूलमें रहता है। वह नासमझ है। उसका नाम पाखण्डी-ढोंगी है। परमात्मासे एक हुए बिना कोई निष्पाप नहीं हो सकता है। अतएव, मनुष्यको अपने दोषको स्वीकार करना चाहिए कि यह दोष उसमें है और छुटाये छूटता नहीं है।

जब आप किसी महापुरुषके सामने पाँवपर पाँव रखकर बैठते हैं, तब आपको मालूम थोड़े ही पड़ता है कि आप अपराध कर रहे हैं। जब आप किसी शिष्ट-पुरुषके सामने बैठकर आपसमें बात करने लगते हैं, तब आपको कहाँ मालूम पड़ता है कि आप उनका तिरस्कार कर रहे हैं। पापके पाँवकी आवाज बहुत ही महीन है। 'यह गलत है'-ऐसी उस अत्यन्त धीमी आवाजको किसी-किसी बुद्धिमानका ही कान सुन पाता है। जब आप पहचान ही नहीं पाते कि पाप क्या है, तब उसको छोड़ ही कैसे सकते हैं? उसको छुड़ानेका सामर्थ्य केवल परमात्मामें है। इसलिए, परमात्माकी शरणमें आना अत्यन्तावश्यक है।

देखो! धर्म आपने किया है। उसको छोड़ भी सकते हो। पाप अनादि-कालसे हुए हैं। जानमें हुए हैं। अनजानमें हुए हैं। उनको आप छोड़ भी नहीं सकते हो। आदमीका स्वभाव ऐसा है कि वह थोड़ा-सा भी अच्छा-काम करता है, तो उसको याद रखता है कि मैंने यह अच्छा किया, यह अच्छा किया, यह अच्छा किया। आदमी जब बुरा काम करता है तो उसपर पर्दा डाल देता है। अपने बुरे कामको ढँक देता है। आदमी अपने पाप भूल जाता है और यदि कोई उसकी याद भी दिलाता है, तो उसे बुरा लगता है। ठीक है कि मैल लगी है; परन्तु अपनी मैल स्वयं भी तो छुड़ा सकता है। नारायण! यही तो समझनेकी बात है कि मनुष्य अपनी मैल स्वयं नहीं छुड़ा सकता है। मैल छुड़ानेके लिए कोई चाहिए। उसके लिए माँ चाहिए। मातृ-प्रेम चाहिए।

माँ बच्चेको गुनगुने पानीमें बैठा देती है और साबुन उसका मैल छुड़ाती है। माँको यह बात सहन नहीं होती कि बच्चेके शरीरमें मैल लगी रह जाये। हमने तो बड़े होनेपर साबुन देखा। हमारे घरमें साबुनका प्रयोग नहीं होता था। सफेद मिट्टी ही काममें ली जाती थी। उसीसे नहाते थे।

उसीसे कपड़े भी धोते थे। धोबीके यहाँसे भी जो कपड़े धुलकर आते थे, उनको भी घरमें धो लेते थे अथवा उनपर गंगाजल छिड़क देते थे और फिर काममें लेते थे। हमारे शरीरमें उबटन लगाया जाता था। संस्कृतमें उबटनको 'उपवर्त्तन' बोलते हैं। माँ हमें अपने पैरोंपर सुला लेती और रगड़-रगड़ उबटन लगाती थी। कभी पीसी सरसों लगाती और नहलाती थी। कभी पानी ठण्डा लगता और कभी गरम भी लगता। कभी हँसते और कभी रोने भी लगते। चाहे कुछ भी हो, माँ नहलाती है। वह कभी भी हमारे शरीरमें लगी मैल नहीं छोड़ती। यह है मातृत्व। यह है मातृ-प्रेम!

नारायण! हमने यह बात इतने विस्तारसे यों कही कि आप अपने जीवनमें इस बातपर ध्यान दें। '**निर्दोषं हि समं ब्रह्म**'। कोई भी शरीरधारी निर्दोष नहीं होता है। जगज्जननी श्रीसीताजी श्रीहनुमानजीसे कहती हैं कि इस सृष्टिमें निरपराध कोई भी नहीं है। श्रीलक्ष्मणजीके प्रति कठोर वचन बोलनेके कारण वह स्वयं भी अपराधी हैं। लंका-दहनके कारण हुए उत्पातसे अनेक गर्भवती स्त्रियोंका गर्भपात हो जानेके अपराधसे श्रीहनुमानजी भी नहीं बचे। अतः सभी दोषी हैं, अपराधी हैं और दण्डके अधिकारी हैं। तब? क्या अभयदाता-करुणा-वरुणालय कोई नहीं? क्यों नहीं? है ना! ईश्वर सर्वसमर्थ-सर्वशक्तिमान-सर्वज्ञ-शरणागत-वत्सल है।

सीताराम! यह बात ध्यान देने लायक है। सबमें पाप रहता ही है। सबको पापका डर भी रहता है। इस डरसे सबको दुःख भी है। इस पाप-भय-दुःखसे मुक्त करनेवाला कोई चाहिए। श्रीकृष्ण छाती ठोंककर बोलते हैं-'वह मैं हूँ। मैं तुम्हें सब पापोंसे छुड़ा दूँगा। तुम्हारा दुःख मिटा दूँगा। तुम्हारा अज्ञान मिटा दूँगा। तुम्हारी वासना मिटा दूँगा। तुम्हारा अभिमान, राग-द्वेष, अभिनिवेश मिटा दूँगा। यह मेरी जिम्मेवारी है। बस! तुम मेरे पास आ जाओ।'

'मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिस्यामि मा शुचः।'

भाई मेरे! क्या अब आपको मालूम पड़ता है कि मनुष्यके जीवनमें ईश्वरकी आवश्यकता क्यों है?

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

'आयहु शरण तजहूँ नहिं ताहू'

शरणागति भगवद्बलकी प्रधानतासे होती है। इसमें अपनी निर्बलताका बल होना ही जीवका अपना बल होता है। शरणागतिमें अधिकारीके विषयमें विशेष खोज-बीन, पूछ-ताछ नहीं होती है कि वह कौन है? कहाँसे आया है? क्या करके आया है? भगवान् शरणागतका पाप नहीं देखते हैं। उसका इतिहास नहीं देखते हैं। उसके पूर्ववृत्तके बारेमें पूछताछ नहीं करते हैं। पापी-से-पापी भी शरणागतिका अधिकारी होता है। '**अपि चेत्सुदुराचारो**'। प्रारब्धके कारण जीव चाहे जिस कूकर या शूकर योनिमें पैदा हुआ हो, शरणागतिका अधिकारी होता है। '**येऽपि स्युः पापयोनयः।**' '**श्रीमधुसूदन सरस्वती**'ने '**पापयोनयः**'का अर्थ किया है- '**गृद्ध्रादयः**'। भले ही गीध क्यों न हो, भगवान्‌की शरणमें जाने पर भगवान् उसका परित्याग नहीं करते हैं। क्रियमाणकी भी बात नहीं है और प्रारब्धकी भी बात नहीं है।

जब बुरे प्रारब्धवाला और नीच योनिमें पैदा होने वाला भी शरणागतिका अधिकारी होता है, तब तो उत्तम कोटिका है, उसकी तो चर्चा ही क्या है? शरणागतिके सब अधिकारी होते हैं। सिर्फ भगवान्‌के सामने होना जरूरी होता है।

सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।
कोटि विप्र वध लागहिं जाहू।
आयहु शरण तजहूँ नहिं ताहू।।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

ईश्वर सर्वथा ठोस

जिसे छोड़ना चाहें और जो फिर भी न छूटे, वह एक अविनाशी, अद्वितीय, आत्मतत्त्व ही 'ईश्वर' है। सब जगह, सब समय, सब रूपोंमें रहनेवाला, जो अविनाशी-ज्ञानस्वरूप-आनन्दतत्त्व है, उसीको शास्त्र 'ईश्वर' कहते हैं।

जो लोग 'ईश्वर' शब्दसे चिढ़ते हैं, वे 'ईश्वर' शब्दका ठीक-ठीक अर्थ मालूम न होनेसे ही चिढ़ते हैं। यदि उनको 'ईश्वर' शब्दका अर्थ ठीक-ठीक मालूम हो जाये, तो वे समझेंगे कि सबका इष्ट एकमात्र ईश्वर ही है। प्राणीमात्रका इष्ट एकमात्र ही है। असलमें, नास्तिक भी ईश्वरको ही चाहता है; लेकिन, वह इस बातको जानता नहीं है कि 'मैं ईश्वरको ही चाहता हूँ।' ईश्वर केवल भावना या कल्पनाकी वस्तु नहीं है। ईश्वर सर्वथा ठोस है।

साधक जहाँ है-जिस स्थितिमें है, उसे वहीं उसी स्थितिमें ईश्वर-दर्शन प्राप्त हो सकता है। यह सम्पूर्ण सृष्टि वृन्दावन है। समस्त स्त्रीवाचक वस्तुएँ 'राधा' हैं। समस्त पुरुषवाचक वस्तुएँ 'कृष्ण' हैं। इस सृष्टिके विशाल-रंगमंचपर जिधर देखो, उधर 'राधा-कृष्ण'का ही दिव्य-विहार हो रहा है। युगल सरकारका ही मिलन हो रहा है। चाहे भावसे बैठाओ-चाहे विचारसे, अपने हृदयमें ईश्वरको ही बैठाओ। ईश्वर सर्वथा ठसाठस ठोस है।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽ!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!

लकड़ीका 'हीर'

मैं आपको अपने बचपनकी एक बात सुनाता हूँ। हमारे यहाँ लकड़ी कटा करती थी। कभी हल बनानेके लिए बबूलकी लकड़ी कटा करती थी। कभी कोई अच्छी चीज बनानेके लिए शीशमकी लकड़ी कटती थी। मैं देखता रहता। लकड़ी कटती जाती; कटती जाती; कटती जाती; और, अन्तमें, उसके बिलकुल बीचमें-से एक कठोर चीज निकलती थी। उसको 'हीर' बोलते हैं। जानते हो वह 'हीर' क्या होता है? वह लकड़ीका हीरा होता है। 'हीर' लकड़ीका हृदय होता है।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

ईश्वर सबके हृदयमें रहता है। मैं विचार करता-जब वृक्षका भी हृदय होता है, तब वृक्षमें भी ईश्वर तो होगा ही। जब लकड़ीका भी हीर होता है, तब लकड़ीमें भी ईश्वर तो होगा ही।

देखो! लकड़ीकी ही तरह जब वस्तुके नाम व रूपका बाहरी अंश-छिलका छीलकर अलग कर देते हैं और जब वस्तुकी अन्तिम सत्ता रह जाती है, तब वह ईश्वर होता है। यहाँतक कि जूँमें व खटमलमें भी जो चेतना है, उसका भी नाम-रूप-क्रिया रहित स्वरूप ईश्वर ही है। पेड़-पौधे आदिका भी नाम-रूप निषेध कर देनेपर जो स्वरूप रहता है, वह ईश्वर ही होता है। तृणमें भी जो नाम-रूप-रस-

गन्ध-क्रिया-अवकाश है, उनको अलग कर दो। नाम-रूप-क्रियात्मक आवरण हटा देनेपर तृणमें भी सत् रूपसे ईश्वरकी ही प्राप्ति होती है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

सिर्फ सम्पूर्ण प्राणियोंके ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण पदार्थोंके भी हृद्देशमें ईश्वरका निवास है। '**भवन्ति इति भूतानिसर्वाणि तेषां सर्वभूतानाम्।**' जो भी चीज है, वह ईश्वर है। जो भी चीज होगी, वह ईश्वर है। '**अस्ति-भवति**' सब ईश्वर है। सबके हृदयमें ईश्वरका निवास है। ईश्वर यहीं है। अभी है। ज्यों-का-त्यों है। '**तिष्ठति**' ईश्वर कहींसे चलकर आता नहीं है। कहीं चलकर जाता नहीं है। ईश्वर कभी फैलता नहीं है। कभी सिकुड़ता नहीं है। ईश्वरमें गति नामकी कोई चीज नहीं है। पदार्थोंमें जो गमनागमन है, परिवर्तनशीलता है, गति है, वह सब ईश्वरके सान्निध्यसे ही है। ईश्वर ज्यों-का-त्यों प्रतिष्ठित रहता है।

सर्वभूतोंके-प्राणी-पदार्थोंके नाम-रूप-क्रियात्मक आवरणको अलग कर देनेपर-हटा देनेपर, अन्तमें, जो कुछ रह जाता है, वह अन्तिम सत्ता ईश्वर है। उस ईश्वरका अपने हृद्देशमें अनुसन्धान करो। अपने अन्तर्यामी ईश्वरको जानो-पहचानो। अपनी समस्त भावनाओंको लेकर उसीकी शरणमें जाओ। खजानों-का-खजाना अपना हृदय है। हृदयके भीतर-अन्दर ईश्वर निवास है। अपने हृदयके अन्तरतम-सूक्ष्मतम-निर्जन प्रदेशमें ईश्वरसे मिलो और आनन्द-ही-आनन्दका अनुभव करो।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽ!!! राऽऽऽऽम!!!!

समर्पण

समर्पणके लिए वस्तुका कोई नियम नहीं है कि करोड़ों-अरबों रुपये दें, सोना-चाँदी दें, हीरा-मोती दें, हजारों बीघा जमीन दें, हजारों मन कोई चीज दें, इत्यादि। एक पत्ता ही दे दीजिये। यह भी जरूरी नहीं है कि वह तुलसीका ही हो या बेलपत्र ही हो। जब पाकिस्तानसे सिन्धी लोग आये थे और उनके पास देनेके लिए कोई चीज नहीं थी, तब वे हमारे पास आनेके पहले रास्तेसे कोई पत्ता ही तोड़कर ले आते थे और लाकरके हमारे सामने रख देते थे। वे यह नहीं देखते थे कि पत्ता कामका है या बेकामका। वे तो केवल खाली हाथ न जानेकी विधि पूरी करनेके लिए ही अडूसेका पत्ता तोड़ करके लाया करते थे। रास्तेसे कोई भी जंगली फूल तोड़ लाते थे। बेर या टेंटी ही ले आते थे। यदि और कुछ नहीं मिलता था, तो जल ही ले आते थे। भले ही कोई भी जल होता, फिर भी वे कहते-'महाराज! यह यमुना-जल है।' इसको 'वस्तु-समर्पण' कहते हैं। इसमें शर्त यह है कि भक्तिपूर्वक वस्तुको लाकरके समर्पण करे। विदुरकी पत्नी भगवान्‌को केलेके छिलके देती गयी और श्रीकृष्ण बड़े प्रेमसे उनको खाते गये। वस्तुका महत्त्व नहीं है। प्रेम-परिपूर्ण समर्पणका महत्त्व है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

वस्तुका समर्पण बहिरंग समर्पण है। समर्पण यहीं तक सीमित नहीं रहता है। यह और आगे बढ़ता है। जो भी हम करें, सो सब भगवान्को समर्पित करें। जो भी काम करें, उसके अन्तमें '**श्रीकृष्णार्पणमस्तु**' बोल दें। हाँ! यदि भोजन करना हो, तो भोजनके प्रारम्भमें '**श्रीकृष्णार्पणमस्तु**' बोलें। जो भी यज्ञ-दान तप करें, सो सब भगवान्को समर्पित करें। यह भी एक प्रकारका समर्पण है। हवनात्मक धर्म देवताके लिए है। दानात्मक धर्म मनुष्यके लिए है। तपस्या आत्मशुद्धिके लिए है। इन सबका भी भगवान्के प्रति समर्पण करें।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

समर्पण केवल धर्म, धर्म, आत्म-शुद्धिका ही नहीं होता है। पूरे-पूरे मन और बुद्धिका भी समर्पण हो जाता है। *'मय्येव मन आधत्स्व'* माने मनका समर्पण। *'मयि बुद्धिं निवेशय'* माने बुद्धिका समर्पण। '**आधत्स्व**' और '**निवेशय**'-दोनोंका ही अर्थ समर्पण है। अपने साथ लगा हुआ जो मन है, उसको भी भगवान्के साथ लगा दो। अपने साथ लगी हुई जो बुद्धि है, उसको भी भगवान्के साथ लगा दो। इससे मन और बुद्धिका समर्पण हो जायेगा। वस्तुतः भगवान्का ही दिया हुआ है और भगवान्की ही दी हुई बुद्धि है। जब सब भगवान्का ही है, तब-
तेरा तुझको सौंपत, क्या लागत है मोर।

जब सब भगवान्को समर्पित कर दोगे, तब कर्मके शुभ और अशुभ-दोनों फलोंसे मुक्त हो जाओगे। संन्यास पूरा हो जायेगा। मुक्त होकर भगवान्से मिल जाओगे। यह है-समर्पण-योग। यह भी भक्तिका एक अङ्ग है।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽ!!! राऽऽऽऽ!!!!

बलिपर भगवत्कृपा

राजा बलिपर भगवान्‌ने जो कृपा की, वह कृपा भगवान्‌ने किसीपर भी नहीं की। बलिने लोक भी दे दिया और परलोक भी दे दिया। भगवान्‌ने कहा—'अभी पूरा नहीं हुआ बलि! जो कुछ मेरा है, सो सब मुझको दे दो। अधूरा क्यों देते हो?' बलिके दिमागमें यह बात नहीं आयी कि भगवान्‌को लोक-परलोक समग्र समर्पित कर देनेपर भी क्या देना बाकी रह गया? किसका बन्धन शेष रह गया? बोले—'शब्द-रूप गरुणका।' फिर गरुणने बँधवाया। वेदोंसे ऊपर नहीं जा सकते। वेदोंमें इसका वर्णन अनेक स्थानोंपर है कि अव्यक्त प्रकृतिसे लेकर धूलिके एक कण-पर्यन्त जिनके चरणोंमें हैं, उन भगवान्‌ने दो पगमें समग्र विश्व-सृष्टिको नाप लिया! लोक-परलोक देनेके बाद भी बलि शब्द-ब्रह्मसे मुक्त नहीं हुए। शब्द-रूप गरुणने उनको बाँध लिया। अभी चक्करमें हैं।

भगवान्‌ने बड़े जोरसे डाँटा-फटकारा—'तीन पग धरती देनेका वायदा करके पूरा नहीं करते हो!' बलिकी समझमें बात आयी। उसने कहा—'**पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम्।**' तीसरे पगके लिए अपना पाँव मेरे सिरपर रख दीजिये। चतुर्थ पग तो देने-लेनेका है नहीं। वह तो जो आप हैं, सो ही हम हैं। तृतीय पद, जहाँ अहं शेष

रहता है, देनेका भी होता है और लेनेका भी होता है।' भगवान्‌ने अपना पाँव बलिके सिरपर रख दिया। बलिने कहा-'मेरे ऊपर जो कृपा भगवान्‌ने की है, वह कभी किसी पर नहीं की है। भगवान्‌ने अपना चरण-कमल मेरे सिरपर रख दिया। मैंने अर्पित नहीं किया। भगवान्‌ने अपना चरण अर्पित किया।' बलिकी बोलनेकी शैली देखिये।

अलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः।

बलिने तो समर्पण किया था; परन्तु, भगवान्‌की इतनी करुणा कि उन्होंने बलिके इस समर्पणको बलात् शरणागतिका रूप दे दिया। देखो! शरणागत भगवान्‌के पास आये, यह तो एक बात है; लेकिन, शरणागतके पास भगवान् आये, यह कुछ दूसरी ही बात है। भगवान् बलिके पास अदितिकी कामना पूरी करनेके लिए अथवा इन्द्रको राज्य देनेके लिए नहीं जाते हैं; बल्कि, इस करुणाके वशमें होकर जाते हैं कि इतना बड़ा धर्मात्मा बलि कहीं किसी छोटी चीजमें न अटक जाये।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

भक्त कौन है?

असलमें, भक्त कौन है? भक्तकी पहचान क्या है? भक्तकी पहचान यह है कि वह अपने प्रेमकी रस्सीसे भगवान्‌के चरणारविन्दको बाँध लेता है। अच्छा! क्या भक्तके प्रेममें इतना सामर्थ्य है कि वह भगवान् के चरणारविन्दको बाँध ले? नहीं-नहीं। बाबा! भगवान् स्वयं अनुग्रह करके भक्तके हृदयमें बैठते हैं। भगवान् इतने अनुग्रहशील हैं कि वे भक्तके हृदयको छोड़ते नहीं हैं। यदि कोई विवशतासे भी भगवान्‌का नाम ले, तो उसके पाप-समूहका-पाप-राशिका नाश हो जाता है। '**विसृजति हृदयं न यस्य साक्षात् हरिरवसादविहितौघ-नाशाद।**'

इसप्रकार, एक बात तो यह है कि भक्त भगवान्‌के चरणारविन्दका इतना लालची है कि वह अपने प्रेमकी डोरीसे भगवान्‌के चरणारविन्दको बाँधकर अपने हृदयमें रखता है और दूसरी बात यह है कि भगवान् भक्तकी भक्तिके इतने लालची हैं कि भक्तके हृदयको छोड़ते नहीं हैं। यह भक्त-भगवान्‌का परस्पर प्रेम दोनों ओरसे होता है।

श्रीमद्भागवतमें पृथुके यज्ञके प्रसंगमें एक कथा आयी है। राजा

पृथुके यज्ञमें स्वयं भगवान् प्रकट हुए। उनकी पूजा-पत्री हुई। इन्द्रसे मित्रता करा दी। जब सब पूजा हो जानेके बाद भगवान् जाने लगे, तब पृथुकी आँखमें-से झरझर आँसू बहने लगे। जब भगवान् गरुणके ऊपर चढ़नेके लिए पाँव रखने लगे, तब पृथुने उनका पाँव ही पकड़ लिया। जैसे कोई घोड़ेपर चढ़नेके लिए तैयार होवे और कोई पाँव पकड़ ले, ठीक वैसे ही भवगान् घण्टों तक गरुणकी पीठपर हाथ रखे हुए खड़े रहे। '**अनुग्रह-विलम्बितः।**'

आप तो जानते हैं-

प्रणयरसनया धृतांघ्रि-पद्मः।
सभवति भागवतप्रधानोक्तः।।

भा. 11.2.55

तो, भाई मेरे! असलमें, भक्त कौन है? जिसके हृदयमें भगवान्के चरणारविन्दके प्रति इतना प्रबल प्रेम हो कि भगवान्के चरणारविन्दको छोड़े नहीं; अपने प्रेमकी डोरीसे भगवान्के चरणारविन्दको बाँधकर अपने हृदयमें रखे; और, जिसके ऊपर भगवान्का इतना परम अनुग्रह हो कि उसके हृदयसे भगवन् अपने चरणारविन्दको हटावें नहीं; वह, असलमें, भक्त है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

सकाम-निष्काम भक्ति

भक्तिमें भगवान् मुख्य कर्त्ता हैं और जीव गौण कर्त्ता है। भगवान् नियोजक हैं और जीव नियोज्य है। भगवान् जैसा नियुक्त करते हैं, जीव वैसा करता है। भक्तिमें भगवान् प्रयोजक हैं और भक्त प्रयोज्य है। भगवान् चलानेवाले हैं और भक्त चलनेवाला है। भगवान् ऐसे ही किसीको नहीं चलाते हैं। उसके पूर्व-कर्म और वर्तमान कर्म दोनोंको देखते हैं। अन्तःकरणमें जो रहता है, वह भी देखते हैं। भगवान् यह भी देखते हैं कि भक्तका आश्रय और प्रीति कहाँ है? सबकुछ भली-भाँति देख-भालकर भगवान् भक्तको चलाते हैं। भक्तका तदनुरूप नियमन करते हैं।

इसे आप यों समझें। एक मुनीब है। सेठके यहाँ ईमानदारीसे काम करता है। जो तनख्वाह मिलती है, उसे अपनी पत्नी और बच्चोंकी सुख-सुविधाके लिए खर्च करता है। मुनीबको सेठका आश्रय है। पत्नी और बच्चोंसे प्रीति है। आश्रय अलग है और प्रीति अलग है। इसको सकाम-भक्ति कहते हैं।

इस विषयमें कला-विलासमें अद्भुत दम्भका परिचय दिया है। एक स्त्री है। वह जाहिर करती है कि वह महाराजकी सच्ची प्रेमिका-सेविका है। जब वह महाराजको अपनी सेवासे प्रसन्न कर लेती है, तब उनसे कहती है-'महाराज! मेरा 'यार' जेलमें बन्द है। आप कृपया उसे

छोड़ दें।' यह सकाम भक्ति हुई। आश्रय महाराजका और प्रीति अपने यारसे।

और देखिये, वेदान्ती शिष्य सद्‌गुरुका शरणागत होता है और मुक्ति चाहता है। सद्‌गुरुका आश्रय और मुक्तिसे प्रीति। यह भी सकाम भक्ति हुई।

यही बात उपनिषदोंमें भी आयी है।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तँ्ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।

(श्वेता. 6.18)

इसमें 'शरण' और 'प्रपत्ति' दोनों शब्दोंका प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ है–'मैं आपके पास आया हूँ और मुक्ति चाहता हूँ।' आपकी शरण है और जेलखानेसे छूटना लक्ष्य है। आश्रय और प्रीति अलग-अलग हैं। इसको सकाम-भक्ति कहते हैं।

सकाम भक्तिमें आश्रय किसीका है और प्रीति किसीसे है। निष्काम-भक्तिमें जिसका आश्रय है, उसीसे प्रीति है। इसमें बँटवारा नहीं होता है कि आश्रय किसी औरका है और प्रीति किसी औरसे है। '**मय्यासक्तमनाः**' और '**मदाश्रयः**'। निष्काम भक्तिमें आश्रय और प्रीति–दोनों एकसे ही होते हैं।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

प्रणव-जप

प्रणवका जप परमार्थका अनुभव प्राप्त करनेके लिये किया जाता है। धर्मशास्त्रोक्त फलकी प्राप्तिके लिए भी प्रणवका जप किया जाता है। जो लोग संसारसे निवृत्त होकर समाधि लगाना चाहते हैं, उनके लिए लयप्रधान प्रणवका जप है। अकारसे उकारमें लय। उकारसे मकारमें लय। मकारसे तुरीयमें लय। इसका मतलब है–विश्व-विराट्से तैजस–हिरण्यगर्भमें लय। तैजस–हिरण्यगर्भसे प्राज्ञ–ईश्वरमें लय। प्राज्ञ–ईश्वरसे तुरीयमें लय। संसार–निवृत्तिके लिए समाधि लगानेके लिये प्रणवका जप लयप्रधान है।

गृहस्थ लोग भी प्रणवका जप कर सकते हैं। ॐ बोलनेमें कोई बाधा नहीं है; लेकिन, अन्य मन्त्रोंके साथ ॐ बोल सकते हैं; वे 'हरि ॐ' जप कर सकते हैं। 'ॐ नमः शिवाय' जप कर सकते हैं। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' जप कर सकते हैं। संसारी गृहस्थ लोग अकेले प्रणवका जप नहीं कर सकते हैं। श्रीहरि, भगवान् शिव, भगवान् वासुदेव–ये सब कार्यवर्गमें हैं। प्रणवका जो अन्तिम रूप है, वह कारण वर्गमें है। यह बात ध्यानमें लो।

जिनको दुनियाँसे छूटना है, उनको अकेले प्रणवका जप करना चाहिए। जिनको दुनियाँको सँभालना है, उनको और मंत्रोंके साथ प्रणव मिलाकर जप करना चाहिए। इसमें हम इस समय जात–पाँत नहीं

जोड़ते हैं। अपने मनमें तो अब जात-पाँत ऐसी बैठ गयी है कि सबको शूद्र मान करके ही धर्मका उपदेश करना चाहिए। यदि वह स्वयं वैश्य हो जाये या क्षत्रिय हो जाये या ब्राह्मण हो जाये, तो हम उसको मानते हैं। यदि हो जाये, तो ठीक है; नहीं तो, उसको छोटे दर्जेसे ही धीरे-धीरे ऊपर उठाना चाहिए। यदि हमें साधारण बताना हो, तो हम सुगम-से-सुगम भगवन्नाम-जपसे ही साधन प्रारम्भ करेंगे।

आजकल ऐसा चला है कि चाहे जो खाओ और चाहे जो पीयो। खाने-पीनेमें संयम ही नहीं रहा। विलायत गये, तो पानीका प्रयोग ही छूट गया। हे भगवान्! खानेका जो नियम था, वह टूट गया। पीनेका कोई नियम-संयम नहीं रहा। जो पीनेका नहीं था, सो पीने लगे। है ना? अच्छा! और देखो! जिनके साथ नाचना नहीं चाहिए, उनके साथ नंगे होकर नाचने लगे। जीवन में कोई मर्यादा नहीं रही। दुनियामें उच्छृङ्खलता बढ़ रही है। ऐसी अवस्थामें, यदि कोई साधन करना चाहे, तो उसको राम-रामसे ही अपना साधन आरम्भ करना चाहिए। भगवान्‌के नामसे अपना साधन-भजन प्रारम्भ करो गह बहुत बड़ी चीज है।

यदि कोई आपको यह शिक्षा देता है कि तुम चाहे जो खाओ, चाहे जो पीयो, चाहे जो बोलो, चाहे जो करो, तो वह आपको नरकमें भेजनेका ही उपाय बताता है। वह आपका मित्र नहीं है। वह आपका शत्रु ही है। हाँ! देखो! इन्द्रियोंमें संयम-नियम-मर्यादा हो। आचरणमें धर्म हो। चरित्रमें पवित्रता हो। मनमें सद्भावना हो-सबका हित हो। बुद्धिमें वेदान्त-ज्ञान-प्रकाश हो। हृदयमें भगवद्भक्ति-भगवत्प्रेम हो। अहंमें निरहं हो। जीवनमें पूर्णता हो। आनन्दमें रहो। राम-राम कहते रहो। राम-काज करते रहो। आत्मा-राममें रमते रहो।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

गायत्री मंत्र

'गायन्तं त्रायते!' जो जप करने वालेकी काम-क्रोध-लोभ-भय-मृत्युसे रक्षा करती है, उसका नाम है-'गायत्री'। **'मननात् त्रायते।'** जिसका मनन करने से हमारा त्राण-कल्याण होता है, उसका नाम है-'मंत्र'। गायत्रीमें भी 'त्र' है और मंत्रमें भी 'त्र' है। अतः गायत्री मुख्य मंत्र है।

ॐ भूभुर्वः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

मंत्र अधिदैव जगत्के साथ हमारा सम्बन्ध स्थापित करता है। **'अधिदैवसम्बन्धस्थापको मन्त्रः।'** जैसे रेडियोका 'ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन' अर्थात् प्रसारण करनेवाला स्थान होता है, ठीक वैसे ही मन्त्रका भी ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन होता है। उसमें 'लाईन' बनी हुई होती है। मंत्रका ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन है-हृदय। हृदयमें मंत्रके उच्चारणकी धाराके प्रवाहकी बिछायी हुई लाईन है। मन्त्रोच्चारणसे आधिदैविक जगत्से हमारा सम्बन्ध स्थापित होता है। देखो! यज्ञशाला बनाते हैं न! समझो कि वह ब्रॉडकास्ट करनेका मकान है। उसमें पण्डितजी बैठ गये और ब्राडकास्ट करने लगे। मंत्रोंने अधिदैव जगत्से हमारा सम्बन्ध बना दिया। वहाँ इन्द्र, वरुण, अग्नि, मित्र आदि देवता उसको 'रिसीव'

करेंगे। उनके पास रेडियो है! हमारी बोली हुई वाणीको वह ग्रहण भी करेंगे और संग्रह 'रेकार्ड' भी करेंगे। हाँ! हमारी प्रार्थना कभी-न-कभी अवश्यमेव सुनी जायेगी।

शब्दकी जो शक्ति है, वह मन्त्रमें विशेष होती है। यह नहीं कि हम इसका अर्थ किताबमें पढ़ लेंगे अथवा अनुवाद पढ़ लेंगे। ऐसा है कि देवताओंसे बातचीत करनेकी जो भाषा है, उसी भाषामें उनसे बातचीत करनी चाहिए। नहीं तो, बेचारोंको दुभाषिया रखना पड़ेगा। देखो! यदि 'डायरेक्ट कॉन्टेक्ट' माने सीधा सम्बन्ध स्थापित करना है, तो उन्हींकी भाषामें बोलो।

मंत्रमें बड़ी शक्ति होती है। हमने 'साबर मंत्र' की शक्ति तो प्रत्यक्ष देखी है। हमारे जो 'आपस्तम्बादि धर्मसूत्र' हैं, उनमें आया- '**मंत्रायुर्वेदवत् च प्रमाणं।**' मंत्र प्रमाण-रूप हैं। देखे हुए हैं। बिच्छूके मंत्रसे विष उतारते हैं। सर्पके मंत्रसे विष उतारते हैं। कोई मंत्र पढ़ता है और उससे काम सिद्ध हो जाता है। मंत्रशक्ति प्रमाण है।

यदि मंत्र स्वरसे बोलते हैं, तब तो ठीक-ठीक सुने जाते हैं। यदि स्वरसे न बोले जायें, तो बीचमें गड़बड़ पैदा कर देते हैं। यहाँसे रूसके लिए प्रसारण कर रहे हैं और पाकिस्तानने बीचमें गड़बड़ पैदा कर दी। भला बताओ! ठीकसे प्रसारण हो सकेगा।? जब स्वर बिगड़ जाता है, तब मंत्रमें गड़बड़ पैदा हो जाती है। उच्चारण ठीक-ठीक न हो और स्वर ठीक-ठीक न हो, तो अर्थका अनर्थ भी हो जाता है। अतएव, मंत्रका जप पवित्रताके साथ करना चाहिए। अपने अधिकारके अनुसार करना चाहिए। जब आप विधिपूर्वक और श्रद्धापूर्वक मंत्रका उच्चारण करेंगे, तब आपको उसका लाभ तत्काल होगा।

कई मंत्र ऐसे होते हैं, जिनका अर्थ जाननेकी आवश्यकता बिल्कुल ही नहीं होती है। जैसे, '**महामृत्युंजय-जप**' करते हैं-'**ॐ हौं जूं सः।**' आप 'ॐ हौं जूं सः' का अर्थ जाननेका कोई प्रयास मत कीजिये। केवल उच्चारण कीजिये। इसी प्रकार, 'बीज-अक्षर' होते हैं, जिनसे भावका अंकुर उदय होता है।

यह तो आप जानते ही हैं कि आजकल बाजारमें किस किस्मके खिलौने बिकते हैं? यों ताली पीटी और चालू हो गया। बाजा बजने लगा। दूसरी ताली बजायी और बन्द हो गया! एक सज्जनने हमें खिलौनेकी एक बस दिखायी। 'गो'-'जाओ' बोलने पर बस चलने लगी। 'स्टाप'-'रुको' बोलने पर बस एकदम ही रुक गयी। यह क्या है? यही तो शब्दकी शक्ति है। आप जानो चाहे न जानो। आप मानो चाहे न मानो। आप मानने-जाननेके लिए स्वतंत्र हैं; लेकिन शब्दकी शक्ति अचिन्त्य है। यह बोला हुआ शब्द आपके मस्तिष्कपर अपनी चोट करेगा-प्रत्याघात करेगा और वहाँ जो यंत्र बन्द पड़े हैं, वे चालू हो जायेंगे। आप शब्द बोलो, आपके हृदयका जो यंत्र अभी तक बन्द पड़ा हुआ है, वह चालू हो जायेगा। मंत्र जप करनेसे हृदय और मस्तिष्क स्वस्थ होते हैं, सत्ता-स्फूर्ति पाते हैं।

महाराज! आजकल तो क्या पूछना? क्या बोलते हैं? 'इलेक्ट्रानिक युग' बोलते हैं! हम घरों में देखते हैं-टेलीफोन का 'रिसीवर' रखा रहता है। टेलीफोनके साथ कोई तार जुड़ा हुआ नहीं रहता और उसको उठाकर कहीं-कहीं तक बात करते हैं। यह क्या है? रेडियोसे जो बात करते हैं, वह क्या है? शब्दकी ही शक्ति है। आजकल जो रॉकेट उड़ाते हैं, उनका नियंत्रण यहींसे कर लेते हैं। वह शब्द-शक्तिसे ही होता है। अतः आप इस बातको ध्यानमें लें कि मंत्रमें जो शब्दकी शक्ति है, वह उपेक्षणीय नहीं है। बड़ी श्रद्धाके साथ मंत्रका जप करना चाहिए। अपनी श्रद्धा और देवताका अनुग्रह-दोनों मिलकर उसमें एक अद्भुत फलकी सृष्टि करते हैं।

नारायण! आप पूछते हैं-गायत्री मंत्र किसने बनाया? क्या सब चीज बनायी हुई ही होती है? आकाश किसने बनाया? जिसने आकाश बनाया, उसीने गायत्री मंत्र बनाया। ढूँढ़िये! जिसने आकाशमें ध्वनि बनायी, उसीने गायत्री मंत्र बनाया। अब आप ढूँढ़ लो कि कौन बनाता है? अच्छा! आप देखो! एक ध्वनि है। जब हम होंठ दबाकर बोलते हैं, तब होंठसे 'प फ ब भ" निकलता है। जब हम कंठपर जोर लगाकर

बोलते हैं, तब 'क ख ग घ' निकलता है। इसीको औपाधिक भेद बोलते हैं। सृष्टिमें एक ध्वनि है। हम अपने अवयवकी उपाधिसे उस ध्वनिमें भेद पैदा कर लेते हैं।

हाँ! ऐसे कह सकते हैं कि गायत्रीके ऋषि 'विश्वावित्र' माने जाते हैं। सचमुचमें, वह विश्वामित्र ही हैं। उनमें संसारके प्रति जो मित्रताका भाव था, उसीसे उन्होंने गायत्री मंत्रको प्रकट किया। व्याकरणके नियमानुसार जब ऋषि वाचक शब्दके साथ 'मित्र' शब्द जुड़ता है, तब उसमें 'आ' प्रत्यय जुड़ जाता है–**मित्रे चर्षौ**। उसमें 'आ' और आ जाता है। विश्वामित्र। अब बात यह है कि मंत्र तो पहलेसे ही था। मंत्रकी जो शब्दराशि है, वह पहलेसे ही थी। उसको विश्वामित्रने देखा और प्रकट किया कि यह गायत्री मंत्र है। जो लोग चित्त एकाग्र करते हैं, उनको आकाशमें मंत्र लिखे हुए दिखायी पड़ते हैं। वेदके मंत्रोंके ऋषि माने द्रष्टा होते हैं। वेदके मंत्रोंके रचयिता नहीं होते हैं।

आजकल बीसवीं शताब्दीमें चमत्कारकी बात करना तो जरा अच्छा नहीं लगता है! काशीमें एक माता थी। उसका नाम 'सिद्ध माता' था। हमारे जो मित्र हैं, अथवा यों कहिये शिष्य हैं– 'ऋषिकुमार'; वह उनके पास रहते थे। जब वह सिद्ध माता बैठकर मंत्र जप करने लगती थीं, तब उसके शरीरमें मंत्रोंकी आकृति उभर आती थी। उनके हाथमें मंत्र पढ़ा जाता था। उनकी छातीपर, पीठपर मंत्र पढ़ा जाता था। मंत्रोंके द्वारा भीतर जो हलचल होती थी, जो स्पन्दन होता था, वही मंत्र शब्दाकृतिके रूपमें शरीरपर उभर जाता था। मंत्रके उच्चारणसे रक्त-संचार तो होगा ही। वायु-संचार तो होगा ही। उससे जो स्पन्दन होता था, वह आकृतिके रूपमें शरीरपर उदय हो जाता था। इसलिए, मंत्र कोई बनाता नहीं है। आकाशमें बिखरे हुए मन्त्रको देखनेवाला ऋषि होता है। ऋषि मंत्र-कर्त्ता नहीं होते हैं; अपितु, मंत्र-द्रष्टा होते हैं।

अब यह जो ग्रह निकालते हैं! तो आजकल तो अमुकके नामपर ग्रह रखते हैं। हाँ! आकाशमें 'गाँधी' नामका भी एक ग्रह है। उसका नाम

'महात्मा गाँधी' रख दिया। जिन्होंने ग्रहोंको देखा, उनके नामपर प्राय: ग्रहोंका नाम रख देते हैं। इसी प्रकार, जिन्होंने मंत्रोका दर्शन किया, जिनके हृदयमें इन मंत्रोंका आविर्भाव हुआ, उनके नामपर मंत्रोका नाम लेते हैं। इन मंत्रोंके ऋषि हैं-विश्वामित्र, मित्रावरुण, वसिष्ठ। ये ऋषि मंत्रोंको बनाते नहीं है। ये पहलेसे विद्यमान मंत्रोंको देखनेवाले हैं। विश्वामित्र गायत्री मंत्रका दर्शन करनेवाले हैं।

नारायण! कहनेका अभिप्राय यह है कि गायत्री मंत्र उसीने बनाया; जिसने आकाश बनाया और आकाशमें ध्वनि बनायी। विश्वामित्रके हृदयमें पहलेसे विद्यमान गायत्री मंत्रका आविर्भाव हुआ और उन्होंने अपने हृदयाकाशमें गायत्री मंत्रका दर्शन किया। विश्वके प्रति मित्रताके भावानुसार विश्वामित्रने गायत्री मंत्रको प्रकट किया।

अब रही फायदेकी बात। आप पूछते हैं-'गायत्री मंत्र जप करनेसे क्या लाभ होता है? 'देखो! यह बनियापनकी बात है कि नहीं? एक बार 'हाथी बाबाजी महाराज' मेरे पास बैठे हुए थे। एक सज्जनने प्रश्न किया-'महाराज! 'राम-राम' कहनेसे के लाभ है जी? मारवाड़ी था। उसने पूछा तो मुझसे ही था। हाथी बाबाजी बोले-'यह बनिया है क्या?' मैंने कहा-'हाँ महाराज! बिल्कुल पूरा मारवाड़ी है।' अरे भाई! अपने जीवनमें कोई एकाध चीज तो ऐसी रखो जो लाभ उठानेके लिए न हो। एक गायत्री मंत्रको छोड़ दो! सन्ध्यावन्दन ऐसा रखो। रोज पाँच-मिनट की सन्ध्या करो। अपना कर्त्तव्य समझ करके करो। निष्काम भावसे करो। अपने जीवनमें एकाध काम ऐसा रखना चाहिए कि उनको बिना कोई फायदा उठाये किया जाये। भाई मेरे! तुम निष्कामताका सत्यानाश ही करना चाहते हो।

वैसे यह भी है कि गायत्री मंत्रका जप करनेसे कामनापूर्ति भी होती है। इसके लिए यदि आप पढ़ना चाहें, तो हम ग्रन्थका नाम बता सकते हैं। कात्यायान सूत्रके अनुसार 'यजुर्विधान सूक्त' नामका एक ग्रन्थ बाजारमें मिलता है। छपा हुआ है। 'श्रीधरशास्त्री वाप्टे' (नासिक)ने सम्पादन किया है। उसमें गायत्री-जपकी विधि लिखी है।

किस कामनाकी पूर्तिके लिए गायत्रीका कैसे प्रयोग किया जाये? इसकी विधि इस ग्रन्थमें लिखी है। कोई जप पानीमें खड़ा होकर करनेका है। कोई जप आग जलाकर करनेका है। कोई जप दीपकके सामने करनेका है। कोई मन-ही-मन करनेका है। कोई जप पदोंको उलट करके भी जप करनेका है। 'गायत्री उपनिषद्' है। 'गायत्री हृदय' है। 'गायत्री सार' है। उनमें सकाम भावसे भी गायत्री जप करनेका विधान है। 'पंचरात्रों' में एक 'अहिर्बुध्न्यसंहिता' है। उसमें यह वर्णन है कि पहले जितने भी अस्त्र-शस्त्र बनते थे, वे गायत्रीके अक्षरोंसे बनते थे। ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मशिरोस्त्र, मेघास्त्र, वायव्यास्त्र, पर्वतास्त्र-ये सब अस्त्र-शस्त्र गायत्रीके अक्षरोंसे बनते थे। गायत्रीके एक-एक अक्षरोंके-जैसे **तत् स वि तु**-छन्द अलग-अलग हैं। इनके देवता भी अलग-अलग हैं। इन अक्षरोंको आगे-पीछे कर देनेसे कैसे कामनाकी पूर्ति होती है, इसका भी वर्णन है।

नारायण! मेरी सलाह तो यही है कि आप लोग कम-से-कम गायत्रीपर इतनी कृपा रखिये कि उससे बनियापन न बनायें। अपना कर्त्तव्य समझ करके, निष्काम भावसे, फायदा उठाये बिना गायत्री मंत्रका जप करें। गायत्री आपकी माँ है। आप ऐसे पूछ रहे हैं कि माँको साड़ी पहनानेसे क्या लाभ है? माँको रोटी देनेसे क्या लाभ है? हाँ! यह प्रश्न है। गायत्रीको माता भी कहें और उससे यह भी कहें कि 'माँ! मैं तुमको रोटी दे रहा हूँ, तुम मुझे महीने भरका बिल चुका दो।' नारायण! यह बात बनती नहीं है। हाँ! गायत्री मंत्रका जप स्वयमेव ही सबसे बड़ा लाभ है। गायत्री मंत्रका जप करो। जप करना मात्र ही सर्वोत्तम फायदा उठाना है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

सत्संग और भजन

हमसे लोग प्रायः यह प्रश्न करते हैं कि 'महाराज! सत्सङ्ग और भजन–इन दोनोंमें बढ़िया क्या है?' अब भला बताओ! क्या कहें? देखोजी! ऐसा है कि सत्सङ्ग और भजन–ये दोनों एक दूसरेके पूरक हैं, सत्सङ्ग करनेसे भजनमें रुचि बढ़ती है। भजन करनेसे सत्सङ्ग समझमें आता है। अतः जीवनमें सत्सङ्ग और भजन दोनों ही हों, तो सर्वोत्तम रहता है। यह तो है दो टूक बा।

'विष्णुपुराण'का श्लोक है–

स्वाध्यायात् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्प्रत्यात् परमात्मा प्रकाशते।।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

‘तुम ठीक कहते हो’

एक महात्माके पास दो शिष्य आये। दोनोंमें विवाद हो गया। एक ने कहा–‘यह सदा विचार-ही-विचार करता रहता है। विचारमें क्या रखा है?’ महात्माने कहा–‘तुम ठीक कहते हो, विचार तो विक्षेप है। तुम विचार छोड़कर शान्त हो जाओ!’

दूसरेने कहा–‘आप मेरी भी तो सुन लो! यह समाधि-ही-समाधि की रट लगाये रहता है; लेकिन, समाधिसे उठनेपर देहमें ज्यों-की-त्यों ‘मैं’ बुद्धि हो जाती है। समाधिसे तो परिच्छिन्न अहंभाव कटता ही नहीं है। विचार करनेसे ही परिच्छिन्तामें-से अहंभाव दूर होता है। अतः समाधि-ही-समाधिकी रट लगानेवाला अज्ञानी है।’ महात्माने कहा–‘तुम ठीक कहते हो। मननसे संशय और निदिध्यासनसे विपर्यय मिटता है अतः जीवनमें मनन, निदिध्यासन दोनों होने चाहिए।’

दोनों ने कहा–‘दोनों ठीक कैसे?’ महात्माने कहा–‘तुम ठीक कहते हो। जिसका विचार पूर्ण हो गया–अज्ञान मिट गया, उसे शान्त होकर रहना चाहिए। जिसका अज्ञान बना है, उसे विचार करना चाहिए। समाधिसे अज्ञान नहीं छूटता है।’

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

साधुता चाहिए

क्या साधु समाजके ऊपर बोझ नहीं है? आत्मबोधके लिए गृह-त्याग, संन्यास, इत्यादिकी क्या आवश्यकता है?

देखो! जिसका चिन्तनसे प्रेम हो जाता है, अन्तर्मुखतासे प्रेम हो जाता है, शान्तिसे प्रेम हो जाता है, उसको यदि बाहरी चिन्तासे मुक्त ही रखा जाये, तो वह चिन्तन करके ऐसे-ऐसे रत्न, ऐसे-ऐसे हीरे दे सकता है कि हम आपको क्या बतावें? यदि कोई अन्तर्मुख हो, तो उसके सत्-संकल्पसे ही विश्व-मानवताका कल्याण हो सकता है। अतः यह तो समाजका कर्त्तव्य है कि ऐसे व्यक्तिका जो भरण-पोषण है, जीवन-रक्षा है, वह समाज स्वयं वहन करे। यदि समाज चिन्तन करनेवालोंको, ध्यान करनेवालोंको, अन्तर्मुख होनेवालोंको अपना भार समझने लग जाये, तो उस समाजके भविष्यके बारेमें हम कुछ भी कह नहीं सकते हैं। बस! इतना समझ लो कि-

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना,
जहाँ कुमति तहाँ बिपति निधाना।।

ईश्वर ही सबको सन्मति दे। भगवान् ही भला करें।

अच्छा! ध्यान दो। आज परिवार-नियोजनको लेकर कितने आन्दोलन चलते हैं? क्या साधुलोग परिवार-नियोजनसे मुक्त नहीं हैं? उन्होंने सरकारका एक भार तो ऐसे ही हटा दिया। वे सरकारसे अपने आवासके लिए भूमिकी माँग भी नहीं करते हैं। अपने व्यापारके लिये मदद भी नहीं चाहते हैं। किसीके घरमें-से बनी-बनायी रोटी मिल गयी; उसको खा लिया और, परमात्माके चिन्तनमें लगे रहे। विश्वका जो परम-कल्याण है, उसके चिन्तनमें लगे रहे। उन्होंने तो आपके सिरका बोझ उतार दिया है। आप अपने दिमागमें जो भविष्यमें बोझ रखना चाहते हैं, वे उसको भी उतारनेके लिए तैयार हैं। आप उनको बोझ क्यों मानते हैं?

फिकर फाँकि फँकनी करे, ताको नाम फकीर।
अलमस्त फकीरा, रहम अल्लाह!

साधु बेख्वाहिश-बेफिकर-बेपरवाह होता है। अब बात यह रही कि आप साधु किसको समझते हैं? क्या आप कपड़ेसे या मालासे या तिलकसे किसीको साधु समझते हैं? देखो! हम साधु वेशका आदर करते हैं। हमको वेशके प्रति कोई दुर्भाव नहीं है। लेकिन साधुता वेशमें नहीं है। आप आदिसे लेकर अन्तपर्यन्त सम्पूर्ण गीताका अच्छी तरहसे अध्ययन कीजिये। आपको किसी भी अध्यायमें कपड़ा-माला-तिलकका उल्लेख नहीं मिलेगा। कैसा कपड़ा पहनना चाहिए? लाल-पीला या नीला-काला या हरा-सफेद? गीतामें कहीं भी इसका वर्णन नहीं मिलेगा। माला कौन-सी पहननी चाहिए? तुलसी या रुद्राक्ष या स्फटिक या सोना-हीरा-मोती-चाँदी, इत्यादि? गीतामें कहीं भी इसका वर्णन नहीं मिलेगा। तिलक कैसे किया जाये? लम्बा या आड़ा या गोल? मलयागिरी चन्दन या रंगीन चन्दन या भस्म-तिलक? सारी गीतामें कहीं भी इसका वर्णन नहीं है।

नारायण! हम उस साधु-वेशका आदर तो बहुत करते हैं, जो परमात्माके चिन्तन-ध्यानमें अन्तर्मुख होनेमें सहायता करनेवाला है; परन्तु, यह जो आपका ख्याल है कि बहुत व्याख्यान दिया जाये अथवा बहुत फावड़ा चलाया जाये, तो जगतका कल्याण होगा, यह बिलकुल गलत है। एक सच्चा साधु बिना व्याख्यान दिये और बिना फावड़ा चलाये भी जगत्का कल्याण करता है। एक सच्चे साधु-हृदयमें उठनेवाला जो सत्-संकल्प है, वह सम्पूर्ण विश्वमें छा जाता है और विश्व-कल्याण हेतु व्याप्त हो जाता है। सचमुच, महात्माओंके सत्य-संकल्पसे ही यह पृथिवी धृत है और यह समाज धृत है। एक सच्चे साधुके मंगलमय जीवनसे इस समाजको एक श्रेष्ठ जीवनका उच्च आदर्श मिलता है।

नारायण! साधुका जीव ही इस समाजको दुश्चरित्रता-दुराचरण, संग्रह-परिग्रह और द्वेष-हिंसादि दोष-दुर्गुणोंसे मुक्त करनेवाला है। एक निर्भय-निर्द्वन्द्व-जीवन्मुक्त साधु अत्यन्त सम्पन्न और अत्यन्त दरिद्र-दोनोंके बीचमें मध्यस्थ होकर खड़ा रहता है। वह अमीरसे कहता है-

'भाई मेरे! तुम इतना अन्याय करके पैसा कमाते हो। तुम धन एकत्र करनेके लिए दूसरोंको इतनी पीड़ा पहुँचाते हो। देखो! मेरे पास कुछ भी तो नहीं है। फिर भी, मैं कितना स्वस्थ-प्रसन्न हूँ। मैं धनके बिना जितना सुखी हूँ, उतना सुखी क्या तुम हो? सुख धनमें नहीं है। सुख अपनी आत्माका स्वरूप है। सुखस्वरूप आत्माका अनुभव प्राप्त करनेका प्रयत्न करो।' वह गरीबसे कहता है-'मेरे संग्रहहीन-परिग्रहहीन भाई! ऐश्वर्य कृत्रिम दौलत है। सन्तोष कुदरती दौलत है। तुम दुःखी मत होवो। तुम अपने कर्त्तव्यका पालन करो। देखो! मेरे पास धन-सम्पदा नहीं है। मेरे पास जमीन-जायदाद नहीं है। मेरे पास अन्य कोई भोग-सामग्री नहीं है; फिर भी, मैं सुखी हूँ। मैं सुखस्वरूप हूँ। मुझे वह बोध प्राप्त है, जिससे मैं सम्राटोंका भी सम्राट हूँ। शहन्शाहोंका भी शहन्शाह हूँ।' महाराजाधिराज हूँ। देखो! दरिद्र वह नहीं है, जिसके पास धन-दौलत नहीं है। भाई मेरे! दरिद्र तो वह है, जिसकी तृष्णाकी सीमा नहीं है। '**स तु दरिद्रो, यस्य तृष्णा विशाला।**' तुम सन्तुष्ट रहो। प्रसन्न रहो।'

यथा लाभ सन्तोष सदा ही।'

रूखी-सुखी खाय के ठंडा पानी पीव।
देख पराई चूपरी, ना तरसावे जीव।।
गौ-धन, गज-धन, बाजि-धन और रतन-धन खान।
जब आवै संतोष-धन, सब धन धूरि समान।।

नारायण! साधुका जीवन अमीरको अपरिग्रह-त्यागकी प्रेरणा देता है और गरीबको सन्तोष-प्रसन्नताकी प्रेरणा देता है। सम्पन्न-विपन्न-दोनोंको प्रेरणा देनेवाला जो साधुका जीवन है, उसको आप समाजके लिए बोझ क्यों समझते हैं? साधु समाजका बोझ नहीं है। साधु समाजका आधार-प्रेरक-आदर्श है। साधुके जीवनसे समाजका मङ्गल होता है। साधुके संकल्प-मात्रसे ही समाजकी उन्नति-प्रगति होती है। यदि समाजका उद्धार चाहते हो, तो साधुकी सेवा करो। साधु चाहिए। हाँ! साधुता चाहिए। बस! इतनी बात है।

साधक सावधान!

जो साधक निम्न पाँच बातोंपर ध्यान देकर अपनी साधना करेगा, उसको शीघ्र सफलता मिलेगी।

१. शरीरसे सेवा–श्रम।

२. इन्द्रियोंसे संयम–नियम–मर्यादा।

३. मनसे सद्भावना–सबका हित।

४. बुद्धिमें विवेक–अपने ज्ञानके प्रकाशमें जाने हुए असत्का परित्याग और सत्का धारण।

५. अहंमें निरहं–किसी भी बाह्य अथवा आन्तर निमित्तसे अभिमानको स्थान न देना।

साधक जीवनकी सफलता और पूर्णताके लिए दो बातें–पवित्रता और गरीबी विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य हैं। पवित्रता माने जीवनमें काम–क्रोध–लोभ–मोहादि दोषोंका अभाव होना और सदाचार–संयम–सद्भावनादि गुणोंका होना। गरीबी माने कम–से–कममें जीवन–निर्वाह। साधकके जीवनमें धनके प्रति महत्त्वबुद्धि नहीं होनी चाहिए। ये दो बातें साधकको ईश्वरके बहुत निकट ले जाती हैं।

साधकको बाल्यावस्थासे ही व्यकितगत साधना करते रहना चाहिए। व्यक्तिकी हृदय–शुद्धिसे ही सामाजिक शुद्धि होती है। साधकको अधिकांशकतः एकान्त–विरक्त जीवनमें रुचि रखनी चाहिये। सभा–संस्थाओंकी दलबन्दीसे घबराना चाहिए। जहाँ तक वश चले, बचते भी रहना चाहिए। प्रायः दलबन्दीके कारण ही संस्थाओंमें भ्रष्टाचार आता है। अतएव, साधकको संस्थाओंके दलदलमें डूबकर अपनी आध्यात्मिक उन्नतिका लोप नहीं करना चाहिए। यदि सम्बन्ध जोड़ना भी पड़े, तो अनासक्त भावसे ही जोड़ना चाहिए। अपनी शक्ति–बुद्धिके अनुसार सेवा कर देनी चाहिए और भजनके समय सब सम्बन्धोंसे ऊपर उठ जाना चाहिए। साधकको अपनी साधनामें एक बातपर विशेष ध्यान देना चाहिए– *'सम्बन्धे सावधानता।'*

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

साधकका लक्ष्य

साधकका लक्ष्य है–परमार्थ! अतः अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए साधकको उत्सव-आयोजन कार्योंमें दिलचस्पी नहीं लेनी चाहिए। परमार्थकी प्राप्तिके लिए कर्ममें उपरति होनी चाहिए। उपरति माने कर्म-व्यापारकी निवृत्ति।

परमाथरकी प्राप्तिके लिए यज्ञ-यागादिमें भी लगनेकी कोई जरूरत नहीं है। स्वर्गके लिए ही यज्ञ-यागादि होते हैं। यज्ञ-यागादि बड़े-बड़े उत्सवोंमें बहुत ब्राह्मण लगते हैं और बहुत दक्षिणा लगती है। यदि साधक उन सब कर्मोंमें लग जायेगा, तो जिज्ञासा नहीं होगी। वह श्रवण-मनन ठीक-ठीक नहीं कर सकेगा। साधकको कहीं भटकनेकी जरूरत नहीं है। यज्ञ-यागादि करनेकी जरूरत नहीं है। नयी-नयी फैक्टरी खोलनेकी जरूरत नहीं है। नया-नया व्यापार शुरू करनेकी जरूरत नहीं है।

यदि व्यवहार बढ़ानेमें दिलचस्पी बनी रहेगी, तो चिन्तन नहीं होगा। व्यवहारमें दिलचस्पी परमार्थ-चिन्तनमें बाधक है। कर्ममें उपरति परमार्थ-चिन्तनमें सहायक है। अतएव, साधकको अपने परमार्थ-लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये उत्सव-आयोजन कार्य-व्यापारकी निवृत्तिमें दिलचस्पी लेनी चाहिए।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

घर-बारका भेद

एक लड़का था। वह पाठशालामें पढ़ने जाया करता था। एक दिन उसके गुरुने पढ़ाया–'आदमीको दूसरों पर दया करनी चाहिए।' दुःखियोंकी मदद करनी चाहिए। बालक घर लौटा तो देखता क्या है कि उसके पिता एक गिड़गिड़ाते भिखारीको खूब जोर-जोरसे फटकारकर घरसे भगा रहे हैं।

दूसरे दिन गुरुजीने पाठशालामें पढ़ाया–'झूठ बोलना पाप है।' बालक घर लौटा, तो उसने देखा कि उसके भाई पिताजीसे कुछ झूठी बातें कह रहे हैं।

तीसरे दिन उसने पाठशालामें गुरुजीसे पढ़ा–'आपसमें मिल-जुलकर रहना चाहिए।' बालकने घर लौटकर देखा कि उसके माँ-बाप आपसमें चिल्ला-चिल्लाकर लड़ रहे हैं और आपसमें मार-पीट भी कर रहे हैं।

अगले दिन वह बालक पाठशाला नहीं गया। पिताजीने पूछा–'तुम आज पढ़ने क्यों नहीं गये?' बालकने कहा–'गुरुजी अच्छा नहीं पढ़ाते हैं। सब उल्टा पड़ाते हैं। पाठशालाकी पढ़ाई घरमें लागू नहीं पड़ती। जो शिक्षा जीवनके व्यवहारमें नहीं उतरती, वह भला मेरे किस कामकी है?

नारायण! ध्यान दो। सन्त महात्मा शास्त्रका उपदेश करते हैं। क्या आपका जीवन शास्त्रानुसार संचालित हो रहा है? आचार्य गुरु हितोपदेश करते हैं। क्या आपके जीवनका निवाह गुरु-शासनानुसारी हो रहा है? कहीं आपकी जीवन-रहनी और गुरु शास्त्र कथनीमें भेद तो नहीं है न! गुरुमुखसे शास्त्रका श्रवण करो। तदनुसार जीवनमें आचरण करो। आचरण ही सर्वस्व है। यदि आचरण और अध्ययनमें अभेद है, तो जीवनमें सौन्दर्य निखार है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

वास्तविक अधिकारी

एक गुण्डे शराबीने कलवारकी दूकानमें जाकर एक पैसेकी शराब माँगी। जब दूकानदारने ध्यान ही नहीं दिया, तब वह गुण्डा शराबी बोला–'क्या तुमने मेरी बात नहीं सुनी? मुझे एक पैसेकी शराब क्यों नहीं दे रहे हो?' दूकानदारने कहा–'भले मानुष! क्या एक पैसेकी शराब मिलती है? एक पैसेकी शराबमें क्या नशा होता है?' गुण्डा बोला–'तुम दो न! नशा होना न होना तो मेरे हाथकी बात है।' यह सुनकर दूकानदारने उससे एक पैसा ले लिया और उसके हाथके ऊपर दो–चार बूंद शराब डाल दी। गुण्डा शराबकी उन दो–चार बूँदोंको नाक एवम् होठोंपर मलकर खूब मतवाला हो गया। शराबके नशेकी मादकताकी कल्पना द्वारा ही वह नशे में मस्त हो गया। शराबके प्रति उसकी निष्ठाने ही उसे नशेमें मस्त बना दिया।

इसी प्रकार, सात्त्विक बुद्धिसे सम्पन्न पुरुषको जैसे–तैसे थोड़ेमें ही समझा दो, तो वह कृतार्थ हो जाता है। इससे हीन पुरुष तो जीवन-भर जिज्ञासा करता फिरे, तो भी मोहग्रस्त ही रहता है।

अथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्त्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विनुह्यति।।

जो वास्तविक अधिकारी है, वह कहीं भी रहकर, कुछ बातें सुनकर ही अपनी निष्ठा पक्की कर लेता है। अमुक बातको किसने कहा है?–इस ओर वह ध्यान ही नहीं देता है। वह केवल बातको ही ले लेता है। वस्तुतः बातकी ही कीमत अधिक है। वास्तविक अधिकारी कथित बातकी सत्यता–असत्यताका विचार करके, अपनी भावनाके अनुकूल बातके द्वारा अपनी निष्ठा और भी अधिक दृढ़ बना लेता है। वास्तविक अधिकारीके लिये कोई भी व्यक्ति व वस्तु उसका गुरु हो सकता है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

फायदा क्या उठायेंगे?

एक आदमीके मनमें शंका आयी कि यदि मैं इस साधु बाबाजीके पास जाऊँगा, तो यह मेरा पाँच रुपया छीन लेगा। यह बाबाजी कोई-न-कोई युक्ति करके मुझसे पाँच रुपया ले ही लेगा। अतः मुझे उसके पास नहीं जाना चाहिए। उसके मनमें यह बात आयी। देखो! विचार यह नहीं करना है कि बाबाजी दुष्ट हैं या बदमाश हैं या धूर्त हैं। हो सकता है। नारायण! सब हो सकता है। क्या मुश्किल है? लेकिन, सब साधककी दृष्टिसे विचार होगा, तब यह नहीं होगा कि बाबाजी कैसा है? अपितु, यह विचार होगा कि यह आदमी विरक्त भी बना, जिज्ञासु-मुमुक्षु भी बना, सत्सङ्गी भी बना; किन्तु फिर भी, यह इस बातसे डर रहा है कि कहीं बाबाजी सत्संगमें मेरे पाँच रुपये छिन न जायें। विचारकी यह प्रक्रिया होगी! इस दृष्टिसे विचार करनेपर बाबाजीके मनका लोभ प्रकट नहीं होगा; बल्कि, उस मुमुक्षुके मनका मोह प्रकट होगा।

देखो! यदि बाबाजीके मनमें कुछ लेने-देनेकी बात हो, तो अपने मनकी वह जाने! साधकको तो अपना मन देखना चाहिए। आत्म-निरीक्षण करो कि अपने मनमें मोह है या नहीं? अपने मनमें लोभ है या नहीं? यदि बाबा मुक्त हो, परमात्माको प्राप्त हो, तो उसके मनमें लोभ-मोहकी कल्पना करना सर्वथा गलत है। लोभ-मोह तो है अपने मनमें

और दीखता है दूसरेके मनमें। बस! इतनी ही बात है। भाई मेरे! इसका मतलब समझनेकी कोशिश करो। तुम पाँच रुपयातक तो छोड़ना नहीं चाहते हो। भला बताओ! तुम संसारको कहाँसे छोड़ना चाहोगे? जब तुम संसारको छोड़ना ही नहीं चाहते हो, तब साधु बाबाजीके पास सत्संगमें जा-जाकर ब्रह्मज्ञानकी बात क्या पूछते हो? यों ही सब-का-सब झूठ-ही-मूठ करते हो न! सीताराम कहो।

असलमें, यह कलियुग-मलमूल है। यह कलियुगका ही प्रभाव है कि लोगोंके मनमें वासनाएँ भरी रहती हैं। सबके मनमें मैल भरी रहती है। कोई किसीपर सच्चा विश्वास नहीं करता है। श्रद्धा-विश्वास करनेमें लोगोंको यह भय लगता है कि कहीं कोई हमारा संसार ठग न ले। नारायण! कोई शौच हो आवे और वह किसीके खेतमें खाद बन जाये। इसपर वह बोले-'नहीं-नहीं। यह काम तो गलत हो गया। अब मैं किसीके खेतमें शौचके लिए नहीं जाऊँगा। जहाँ किसीका खेत न हो, वहाँ मैं शौचके लिए जाऊँगा। अरे बाबा! तुमको तो फेंकना ही है। फेंकना है कि नहीं? यह संसार तो छोड़नेकी ही चीज है! यह संसार भीतर-ही-भीतर समेटनेकी वस्तु नहीं है। है न?

देखो! जिसके भीतर त्यागकी भावना नहीं है, धैर्य नहीं है, आत्मबल नहीं है, वह दूसरेके ऊपर श्रद्धा-विश्वास कर ही नहीं सकता है। उस अश्रद्धालु, विश्वासीसे तो भगवान् ही बचायें। यदि संशयालु आदमी किसी साधुके पास न जाये, तो साधुका मंगल ही है। साधुके पास तो उसको जाना चाहिए, जो त्याग-वैराग्य-सम्पन्न हो; जो श्रद्धा-विश्वास-सम्पन्न हो; जो जिज्ञासु-मुमुक्षु हो; और, जिसके अन्दर बड़ा धैर्य एवं आत्मबल हो। नारायण! जिन लोगोंमें कष्ट सहनेके लिए आत्मबल न हो, त्याग करनेके लिए वैराग्य न हो, धैर्य-गाम्भीर्य न हो, ब्रह्मज्ञानामृतपान करनेके लिए हृदयमें श्रद्धा-विश्वास न हो, ऐसे लोग साधु-बाबाके पास क्या जायेंगे? और जाकर भी क्या करेंगे? फायदा क्या उठायेंगे?

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

अहंकारका कथन

एक कुलटा स्त्री उपपतिके साथ खुशी मना रही है। बगलके कमरेमें उसका पति सोया हुआ है। खूब मजा लूटते हुए स्त्रीने कहा– 'हम इतना आनन्द मना रहे हैं। मेरा पति भी इस आनन्दका भागी क्यों न बने? क्या उन्हें जगाकर बुला लें?' जवाबमें उसके उपपतिने कहा– 'खबरदार! उन्हें जगानेपर वे तुम्हें और मुझे जिन्दा नहीं छोड़ेंगे। वे हमें मार डालेंगे। इसलिए, उन्हें मत जगाओ!' यह रहा दृष्टान्त!

इसी प्रकार, बुद्धिरूपिणी स्त्री अपने अहंकाररूप उपपतिके साथ खूब मौज उड़ा रही है। बुद्धिका पति है–परमानन्दस्वरूप आत्मा। वह अज्ञानरूपी निद्रामें निद्रित है। बुद्धि कहती है–'क्या अपने पतिको इस आनन्दका रत्तीभर भी नहीं दूँगी? क्या उन्हें जगायें?' उपपति अहंकार बुद्धिको कहता है–'तुम अपने पति परमानन्दस्वरूप आत्माको नहीं जगाओ, वे सोये हैं, तो सोने दो। उनके जागनेपर तुम, मैं, यह जगत्– किसीका भी बचाव नहीं होगा। मूल अविद्याके साथ सर्व जगत् ध्वंस हो जायेगा।'

अहंकारो धियं ब्रूते-मा सुषुप्तं प्रबोधय।
उत्थिते परमानन्दे न त्वं नाहं नेदं जगत्।।
राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

वृद्धोंकी उपयोगिता है

कहीं बरात जानी थी। कन्या पक्षसे सन्देश आया–'केवल युवक-ही-युवक बरातमें आयें। कोई वृद्ध न आये।' ऐसा ही प्रबन्ध किया गया। वरका पिता वृद्ध था। उसने आग्रह किया कि 'मैं अवश्य चलूँगा।' उसे छिपाकर ले जाया गया। द्वारचारके बाद जनवासमें सन्देश भेज दिया गया कि–'हमारे गाँवमें छोटी-सी नदी बहती है। पहले उसे दूधसे भर दो, तब विवाह होगा, अन्यथा नहीं।' बरातके युवक निराश हो गये। किसीको कुछ सूझे नहीं। लौटनेकी तैयारी होने लगी। ज्ञात होनेपर वृद्ध पिताने कहा–'इसमें क्या रखा है? कन्या पक्षको समाचार भेज दो कि वे शीघ्र-से-शीघ्र अपनी नदी खाली करा दें। हम तुरन्त उसे दूधसे भर देते हैं।' कन्या-पक्ष वाले हार मान गये और समझ गये कि इनके साथ कोई वृद्ध पुरुष अवश्य है।

जीवनमें समस्याका आना स्वाभाविक है। समस्याके समाधानके लिए वृद्धोंकी उपयोगिता है। अतः जीवनमें वृद्धोंकी आवश्यकता है। वृद्ध गुरु हैं। अन्तःकरण वृत्तिके नितान्त सात्त्विक होनेपर ही ब्रह्मकारता होती है। यह कन्यापक्ष है। अन्तःकरण निर्वृत्तिक हो नहीं सकता है। अतएव, वर्तमान स्थितिमें ही महावाक्य जन्य ब्रह्माकार वृत्ति बना लेनी चाहिए। विवाहका यही शुभ-मुहूर्त है। यह वर-पक्ष है। 'नदीको खाली कर दो'–यह केवल युक्ति है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

जैसा बन्धन, वैसी मुक्ति

एक कुम्हार था। वह प्रतिदिन जंगलमें गधोंको लेकर मिट्टी लानेके लिए जाया करता था। दोपहरको स्वयं विश्राम-भोजन करनेके लिए वह गधोंको एक पेड़के नीचे भिन्न खूँटोंमें बाँध दिया करता था। एक दिन सब गधे तो बँध गये; परन्तु, एक को बाँधनेकी रस्सी नहीं मिली। वह गधेका कान पकड़कर खड़ा हो गया। यदि छोड़ दे, तो गधा भाग जाये। यदि पकड़ कर रखे, तो भोजन-विश्राम कैसे करे? इसी दुविधामें पड़ा हुआ वह दुःखी हो रहा था। उधरसे एक समझदार सत्पुरुष निकले। उन्होंने पूछा-'क्यों भाई, क्या समस्या है?' कुम्हारने अपना दुःख निवेदन किया। सत्पुरुष ने कहा-'इस गधेको प्रतिदिन जिस स्थान पर बाँधते हो, वहाँ ले जाओ और जैसे सचमुच बाँधते समय इसके पाँवमें हाथ लगाते हो, वैसे ही झूठ-मूठ हाथ लगाओ। देखो! क्या होता है?' कुम्हारने भोजन-विश्राम किया। चलनेके समय और सब गधोंकी रस्सी तो खोली; परन्तु उसकी नहीं खोली। गधा जहाँ-का-तहाँ खड़ा रहा। कुम्हार हाँके और लाठी भी मारे; परन्तु घूमकर वहीं खड़ा रह जाये। तनिक भी हटे नहीं। एक नयी समस्या उत्पन्न हो गयी। भोले कुम्हारने सोचा कि कहीं वह मनुष्य कोई जादू-टोना तो नहीं कर गया। वह सत्पुरुष फिर आया। देखते ही सारी समस्या समझ गया। बोला-'भलेमानुस! जैसे झूठ-मूठ बाँधा है, वैसे ही झूठ-मूठ खोल भी दे।' कुम्हारने झूठ-मूठ हाथ घुमा दिया। गधा अपनेको खुला समझकर वहाँसे भाग निकला।

ध्यानमें लो। अपने नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मामें बन्धन और मोक्ष दोनों ही आरोपित हैं। अज्ञानीसे बन्धन है। जो अज्ञानसे होता है, वह वास्तवमें होता ही नहीं है। ज्ञानसे मोक्ष है। जो ज्ञानसे होता है, वह पहलेसे ही विद्यमान रहता है। वस्तुतः न बन्धन है और न मोक्ष है। 'मैं बद्ध हूँ' और 'मैं मुक्त हूँ'-यह दोनों ही अभिमान अज्ञानकृत हैं। इसीसे, वेद-वेदान्त स्पष्टम्-स्पष्टम् उद्घोष करते हैं कि ज्ञानसे मुक्ति होती है। बन्धन अध्यासकृत है। यदि वन्धन आध्यात्मिक न होता तो ज्ञानसे निवृत्त ही न होता। बद्धपनेके भ्रमकी निवृत्ति ही मुक्ति है। मुक्ति स्वतः कोई वस्तु नहीं है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

प्रतिदिन एक नया रहस्य

आपको अपनी एक बात सुनाता हूँ। मैंने व्यक्तिगत रूपसे गीता पढ़ी है। हम लोग पाँच-छह व्यक्ति अलग-अलग तरहकी गीता लेकर पढ़ने बैठते थे। किसीके हाथमें 'शांकर-भाष्य', किसीके हाथमें 'शंकरानन्दी', किसीके हाथमें 'मधुसूदनी', किसीके हाथमें 'ज्ञानेश्वरी' और किसीके हाथमें 'लोकमान्य-तिलक'की गीता रहती थी। हम सब लोग आपसमें मिलकर पढ़ते और विचार करते थे।

हम लोग ऐसे सोचते-विचारते थे कि यदि हम ब्राह्मण हैं, तो भगवान्‌ने हमको क्या आज्ञा दी है? यदि हम क्षत्रिय हैं, तो भगवान्‌ने हमको क्या आज्ञा दी है? यदि हम वैश्य हैं, तो भगवान्‌ने हमको क्या आज्ञा दी है? यदि हम शूद्र हैं, तो भगवान्‌ने हमको क्या आज्ञा दी है? यदि हम हाथी, घोड़ा, ऊँट, गधे हैं, तो भगवान्‌ने हमको क्या आज्ञा दी है? और फिर, हम लोग कहते-'**कर्मण्येवाधिकारस्ते।**' यदि हम गधे हैं, तो क्या हुआ? अपना जो काम है-बोझ ढोनेका, उसको छोड़ो मत। बोझ ढोते चलो। इस तरह, हम लोग सम्पूर्ण गीतामें एक स्थितिके साथ तादात्म्य करके उसका गहन-गम्भीर-विस्तृत अध्ययन करते थे।

गीता भगवतीने हमको हमारे अधिकार और योग्यताके अनुसार अर्थ बताया, बताती गयी और अब भी बताती रहती है। गीता माता हमको प्रतिदिन एक नयी दिशा, एक नया संदेश एक नया रहस्य बताती है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

भगवान्‌की वाणी : पहचान

'भारद्वाज-मीमांसा-दर्शन' और 'आङ्गिरस-मीमांसा-दर्शन'का कहना है कि हम कैसे पहचानें कि गीता भगवान्‌की वाणी है? कोई कहता है कि भगवान्‌ने ऐसे कहा है कि कोई कहता है कि भगवान्‌ने वैसे कहा है। कोई मतवादी आकर बोल देता है कि भगवान्‌ने हमसे ऐसे कहा है कि कोई भी पन्थाई आकर बोल देता है कि भगवान्‌ने हमसे ऐसे कहा है। परन्तु हम कैसे जानें?

देखो! भगवान्‌की वाणीकी एक पहचान यह है कि भगवान्‌की वाणीसे सत्-चित्-आनन्द प्रकट होता है। जैसे भगवान्‌का स्वरूप अनन्त-जीवन, अनन्त-ज्ञान और अनन्त-आनन्द है, वैसे ही भगवान्‌की वाणीके एक-एक प्रकरणसे, एक-एक अध्यायसे सत्-चित्-आनन्द प्रकट होता है। भगवान् सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। अतः वे बोलेंगे भी सच्चिदानन्द।

हम बड़े-बड़े वक्ताओंको जानते हैं, जो कहते हैं–'बस! गीताका भाव केवल इतना ही है कि '**करिष्ये वचनं तव।**' जब आज्ञाका पूर्णरूपेण पालन होगा, तब पूर्ण शरणागति होगी। इसलिए, पूर्ण शरणागतिमें ही गीताका भाव है।' नारायण! ऐसे लोग भगवान्‌की वाणीको एक सीमामें ले आना चाहते हैं और बहुत ही संकीर्ण बनाकर रखना चाहते हैं। भगवान्‌की वाणी तो असीम-अनन्त है; उदीर्ण-व्यापक है; और, अद्वितीय सच्चिदानन्द-स्वरूप है।

भगवान्‌की वाणीकी दूसरी पहचान यह है कि वह सबके लिए हितकारी और कल्याणकारी है। भगवान्‌की वाणीसे सत्त्वगुणी-रजोगुणी और तमोगुणी–इन तीनों प्रकृतिके लोगोंका भला होता है। जिसमें सबके हितपर दृष्टि नहीं है, वह भगवान्‌की वाणी नहीं है जिसमें केवल एक पन्थपर, एक सम्प्रदायपर, एक मजहबपर, एक फिरकेपर दृष्टि है, वह तो भगवान्‌की वाणी नहीं है। और न ही वह भगवान्‌की दृष्टि है। भगवान्‌की दृष्टि तो है–'**सर्वभूतहिते रताः।**' गीतामें सबके हितकी बात कही गयी है। अतएव, गीता भगवान्‌की वाणी है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

कर्मयोग

गीतामें प्रतिपादित कर्मयोगका अर्थ है कि आप निकम्मापन छोड़ दीजिये। आप पलंग पर लेटकर या बैठकर या लोगोंके साथ व्यर्थकी गप्प मारकर अपना समय नष्ट मत कीजिये। अपने जीवनमें एक क्षण ऐसा न हो, जो अपने कर्मका अंग न हो। आप लघुशंका करके आइये; क्योंकि, आपको काम करना है। आप शौच होकर आइये; क्योंकि आपको काम करना है। आप थोड़ी देर सो लीजिये-विश्राम कर लीजिये; क्योंकि आपको काम करना है। तो, पहली बात तो यह है कि आप अपनेको निकम्मेपनसे छुड़ा लीजिये। निकम्मेपनसे छूटना मुक्ति है।

अब विचार करो कि कर्म कैसा हो? आप अपनेको काम-क्रोद-लोभ-मोहके वशमें होकर किये गये बुरे कर्मोंसे बचाइये। आप अच्छे कर्म कीजिये। अच्छे कामकी पहचान यह है कि उससे अपना भी हित होता है और दूसरोंका भी। जैसे, किसान द्वारा सम्पन्न कृषि-कार्य। खेती करनेसे किसान स्वयं भी खायेगा और दूसरोंको भी खिलायेगा। अन्नकी उपजसे किसानको पहननेको भी मिलेगा, उसका घर भी बनेगा, दवा भी मिलेगी, शादी-व्याह भी होगा और वह दूसरोंका भी पालन-पोषण करेगा। यह हितकी दृष्टि हुई। अन्नके उत्पादनमें किसानका अपना भी हित है और दूसरोंका भी। इसी प्रकार, कपड़ा बनाते हैं, सीमेंट बनाते हैं, औषधि बनाते हैं, धर्मशाला बनाते हैं और पाठशाला आदि बनाते हैं। जीवनमें जितने भी कर्म हैं, उनमें यदि अपने हित और दूसरोंके हित पर दृष्टि है, तो वे अच्छे कर्म हैं। वह बनिया फेल हो जायेगा, जो ग्राहकको अच्छी चीज देनेकी कोशिश न करके, अपना ही फायदा उठाना चाहेगा। वह ग्राहक भी फेल हो जायेगा, जो बनियेकी चीजकी कीमत ठीक-ठीक नहीं चुकायेगा। दोनोंके साथ यह न्याय लगा हुआ है।

तो देखिये! निकम्मे मत रहिये। बुरे काम मत कीजिये। केवल अपने स्वार्थके लिए काम मत कीजिये। निस्स्वार्थ काम करके उसका अभिमान भी मत कीजिये। ईश्वरकी कृपासे, ईश्वरकी शक्तिसे ही कर्म होता है। ईश्वरके प्रति अपने कर्म अर्पण कर दीजिये। शक्ति उसीकी है, प्रेरणा उसीकी है। वही करा रहा है। यह तो मालिककी चीज है। हमारी है

ही नहीं। आप देखिये। आपके किये होता ही क्या है? सब हो रहा है। आप तो केवल अभिमान ही करते हैं।

धरती सबको धारण भी करती है और चलती भी है। जल सबकी प्यास बुझाता है। अग्नि सबको ऊर्जा और तेज देती है। वायु सबको प्राण देता है। आकाश सबको अवकाश देता है। सूर्य सबको ताप और प्रकाश देता है। चन्द्रमा सबको आह्लाद और प्रकाश देता है। आपके शरीरसे भी सभी कर्म समष्टिकी अनुकूलताकी दृष्टिसे ही हों। यहाँ धरती पर आप अपना एक-मन, डेढ़-मन, दो-मनका वजन लिये चलते-फिरते हैं। यदि आप धरतीसे दो-चार कोस ऊपर हों, तो आप कागजकी तरह आसमानमें उड़ने लगेंगे। आपका वजन वजन नहीं होगा। ऐसी स्थितिमें, आप अपने अभिमानको छोड़कर परमात्माके प्रति समर्पित हो जाइये। अपनी परिच्छिन्नताको छोड़िये। अपनी अहंता-ममताके क्षुद्र सांसारिक भावसे ऊपर उठिये। नरकसे डरिये मत और स्वर्गमें जानेका लालच भी मत कीजिये। किसी भी वस्तुकी ऐसी वासना मत रखिये कि वही होना पड़े। अपने स्वरूपको सँभालिये।

कर्मयोग माने शान्तिका वह मार्ग, जो आपको सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त कर देता है। देखो! सबसे पहले आप अपनी समस्याएँ भगवान्‌के सामने रखिये। विचारपूर्वक काम कीजिये। विचारका साथ मत छोड़िये। अपनेको निकम्मेपनसे उठाकर परमात्माके कर्मके साथ मिला दीजिये। अर्थात् यदि आपका ईश्वरसे कुछ मतभेद हो, तो मिटा दीजिये। 'पंडित जवाहरलाल नेहरू'से एक धनी सेठने दुश्मनी जोड़ी। उनके लिए अपशब्द कहे। नेहरूजीने तो उसका विरोध नहीं किया होगा; परन्तु, सम्पूर्ण सरकारी तन्त्र उसके विरुद्ध हो गया और वह पिस गया। यदि आप अपना मंगल चाहते हैं, तो आप सम्पूर्ण जगत्‌के परमेश्वरके मनसे अपना मन मिलाइये। उसकी हाँ-में अपनी हाँ मिलाइये। उसके साथ कोई मतभेद मत कीजिये। पत्थरके साथ अपना सिर मत टकराइये। अपनी वासनाके गुलाम मत बनिये। ईश्वरके सामने अपनेको एक सूखे पत्तेकी तरह डाल दीजिये। देखिये! आपका मंगल-ही-मंगल है।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

विषादयोग

गीतामें वर्णित विषादयोगका आजके भौतिक जीवनमें क्या महत्त्व है? आइये! इसे समझनेका प्रयास करते हैं।

देखो! आपको दिनमें दो-चार बार तो विषाद जरूर होता ही होगा। ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जिसके जीवनमें सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुखकी वृत्तियाँ न उठती हों। दिनमें-रातमें कई बार सुख-दुःखकी वृत्तियाँ आया-जाया करती हैं। विषाद तो सबके जीवनमें रहता है; परन्तु, योग नहीं रहता है। विषादयोग नहीं रहता है। योग माने अपने विषादको भगवान्‌के सामने उपस्थित कर देना। जब आपके मनमें दुःख आये, तब उसे भगवान्‌के सामने रख दीजिये। भगवान् का दर्शन होते ही स्मरण होते ही वह दुःख विषाद योगके रूपमें हो जायेगा। जबतक आप अपने सिरपर दुःखका बोझ रखते हैं, तबतक वह विषाद है। जब भगवान्‌के सामने दुःखका निवेदन कर देते हैं, तब वह योग हो जाता है।

देखो! यदि योगका-भगवान्‌का एक छोटा-सा अर्थ करें, तो विषादयोग माने आप अपनी तकलीफको समाजके सामने रख दीजिये। यदि आपके मनमें कोई सच्चा संकट है-जो केवल आपके मनकी उलझनोंका संकट नहीं है-तो आप उसे समाजके सामने रख

दीजिये। समाजके सामने अपनी सच्ची तकलीफ रखना भगवान्‌के सामने रखना ही है। जब समाज देखेगा कि आपके संकटका कारण कोई अन्याय है, तो वह उसे दूर करेगा और आपकी मदद करेगा। 'काल.बादेवी रोड' पर एक चोर भाग रहा हो और लोग उसको पीटना शुरू कर दें। यदि वह चोर चुपचाप खड़ा हो जाये, तो सड़क पर चलने वाले लोग उसी चोरके प्रति सहानुभूति करने लगेंगे कि इस बेचारे चुपचाप आदमीको तुम लोग नाहक क्यों पीट रहे हो?

अच्छा! आप अपने विषादको विराट्‌के सामने रख दीजिये। आपके गाँवमें कभी कोई दुर्घटना हो जाये और आपके मनमें विषाद आजाये, तो आप अपने विषादको विराट्‌से मिलाकर देखिये। वह बिल्कुल छोटा हो जायेगा। 'पांपिआई'में कैसा ज्वालामुखी फटा था?' 'कोलम्बिया'में कैसा ज्वालामुखी फटा है और फट रहा है? हजारों-लाखों आदमी सृष्टिमें मर रहे हैं। जिस बातको संसारी लोग बहुत बड़ी और बहुत महत्वपूर्ण समझते हैं, उसको यदि पूर्ण दृष्टिसे देखा जाये, तो उसकी कोई कीमत नहीं होती है। आपको तो एक मच्छर भी काट जाये, तो बड़ा भारी दुःख हो जायेगा। आपको क्या मालूम कि लोग जंगलोंमें, पहाड़ोंमें और गाँवोंमें किस परिस्थितिमें रहते हैं? हमारे बचपनमें, गाँवमें शामको पशुओंको मच्छरोंसे बचानेके लिये नीमकी पत्तियोंको आगमें डालकर जलाया जाता था। नीमकी गन्धसे मच्छर भाग जाते हैं। हम लोग अपने गाँवमें, अपने शरीर पर कड़वा तेल लगाकर रहते थे, जिससे मच्छर न काटें। जो लोग एअरकंडीशनमें मच्छरदानीमें रहते हैं, वे लोग तो केवल एक मच्छर देखकर ही परेशान हो जाते हैं।

वस्तुतः हमारे मनकी निर्बलता ही हमें दुःख देती है। पैसोंका आना-जाना, व्यक्तियोंसे मिलना-बिछुड़ना, घर-द्वारका अदलना-बदलना, इत्यादि दुःख नहीं देते हैं। बाहर कहीं दुःख नहीं होता है। यह केवल कल्पना ही है कि यहाँ दुःख है और वहाँ जाने पर सुख मिलेगा। रोटी खानेमें दुःख है और मालपुआ खानेमें सुख है। यह कल्पना मात्र

है। हाँ! यदि रोटी खायेंगे, तो जीभके स्वादमें थोड़ी कमी आ सकती है; परन्तु, मालपुआ खायेंगे, तो डाक्टरकी जरूरत पड़ेगी। जब हम परिस्थितिको बदलकर दुःख मिटाना चाहते हैं, तब हमारी सारी-की-सारी दृष्टि कल्पनापर ही है। हमारी दृष्टि सच्चाई पर, भगवान् पर, आत्मा पर, परमात्मा पर नही है।

देखो! दूसरी जगह सुख मिलनेकी आपकी कल्पना बिल्कुल पौराणिक है, 'माईथोलोजिकल' है। इस बातमें कुछ सत्य नहीं है कि यहाँ सुख नहीं है, वहाँ है। अब सुख नहीं है, तब है। इसमें सुख नहीं है, दूसरेमें है। यह कोरी कल्पना है कि यह पत्नी काली होनेसे सुखप्रद नहीं है। सुख तो गोरी पत्नी में होगा। भाई मेरे! जब गोरी पत्नी आयेगी, तब वह आपको अपना गुलाम बनाकर रखेगी। इससे आपको गोरीमें बहुत दुःख होगा यह कोरी कल्पना ही है कि यह पति कम कमाता है अतः इसमें सुख नहीं है। सुख तो बहुत कमाऊ पतिमें होगा। सीताराम करो! ऐसा ही है। जब कमाऊ पति आयेगा, तब आपको डाँट-डपटकर बिल्कुल ठीक करेगा। जब आप दुनियाको बदलकर अपना दुःख मिटाना चाहते हैं और सुखी होना चाहते हैं, तब उसमें विवेक-विचार नहीं है। यदि आप अपने दिलको बदलकर सुखी होना चाहेंगे और सुखी रहना चाहेंगे, तो निःसन्देह सुखी होंगे और रहेंगे। आप अपने दिलको बदलिये। अपनी बुद्धिको बदलिये। दुनियाँको बदलनेका ख्याल अपने दिल-दिमागसे निकाल दीजिये।

विषादयोग माने अपने विषादको विराट् प्रभुके सामने, सर्वव्यापी परमेश्वरके सामने समर्पण करना। अपने विषादको अपने परमप्रियतम भगवान्के सामने रख देना। मान लो, आप अपना दुःख अपने प्यारेसे निवेदन करें और वह एक बार मुस्कराकर आपकी ओर देख ले, तो क्या आपका दुःख रहेगा? इसका नाम है-विषादयोग।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

योगका उपयोग

यदि आप सोचते हैं कि हमारा कोई स्वजन न मरे, हमारी धन-हानि कभी न हो, हमारे शरीर में कभी कोई रोग न हो, हमारा अपमान न हो, तब हम सुखी होंगे, तो ऐसा सोचना ठीक नहीं है। सम्बन्धी मिलेंगे और बिछुड़ेंगे। धनमें हानि-लाभ होगा ही। युवावस्थामें चढ़ाव-उतार होगा। मान भी कभी रहेगा और कभी नहीं रहेगा। संसारको बनाकर आप सुखी नहीं हो सकते हो। सुखी होनेकी एक कला है। उस कलाका नाम 'योग' है।

बचपनकी बात है। अरहर कटनेपर मैं नंगे पैर खूंटी-भरे खेतमें दौड़ता था। अरहरकी खूँटी तीक्ष्ण और दृढ़ होती है। यदि उसपर पैर पड़े, तो पैरके आर-पार हो जाती है। लेकिन, मुझे कभी चुभी नहीं। अच्छा! और सुनो! बचपनमें गाँवके किवाड़ोंमें-खम्भोंमें डामर (अलकतरा) लगाया जाता था। जब मेरे दरवाजेपर खम्भों-किवाड़ोंमें डामर लगता था, तब मैं अपने साथके लड़कोंसे कहता था-'हम लोग बारी-बारीसे पचास-बार बाहर-भीतर जायेंगे। जिसके कपड़ोंमें डामर न लगे, वह जीत जायेगा।' मेरे कपड़ोंमें प्रायः डामर नहीं लगता था। जीवन ऐसा ही है। यह भगवदंश स्वच्छ-निर्मल चेतन है। चाहे दुःखोंके अम्बारमें-से निकलना हो; लेकिन, इसे संसारका दुःख छू न सके। इसी कौशलका नाम 'योग' है।

बंगालके 'श्रीरघुनाथ शिरोमणि' न्यायशास्त्रके बहुत बड़े विद्वान् हुए हैं। जब वे पाँच वर्षके थे, तब एक दिन उनकी माताने कहा-'बेटा! 'सार्वभौमजी'के घरसे अग्नि ले आओ।' छोटा-सा बालक नंग-धड़ंग भागा और सार्वभौमजीके घर जाकर उसने सेवकसे अग्नि माँगी।

सेवक अप्रसन्न होकर बोला–'कुछ लाया तो है नहीं। अग्नि किसपर ले जायेगा? ले हाथपर आग।' सेवकने चिमटेसे अंगारा उठाकर बालककी ओर बढ़ाया। बच्चेने इधर-उधर देखा। वहाँ राख पड़ी थी। उसने हथेलीमें राख भर ली और उस राखपर अँगार लेकर घर चल पड़ा। सार्वभौमजी इतने छोटे बालककी यह युक्ति देख रहे थे। वे उसके पीछे चल पड़े। उसकी माँके पास जाकर बोले–'यह बच्चा मुझे दे दो। मैं उसे पढ़ाऊँगा।' वही बालक पढ़कर महान् विद्वान हुआ। उस पाँच वर्षके बालकने अग्निसे बचनेकी युक्ति सोच ली; परन्तु, आपको दुःखसे बचनेकी युक्ति नहीं आती है। सुख-दुःख, सफलता-विफलता, समता-विषमता, जीवन-मरण, जड़ता-चेतनता, समाधि-विक्षेपमें समत्वकी कल्पनाका नाम 'योग' है। यह वह कला है, जिससे आपको दुःख स्पर्श नहीं करेगा।

दुःख-संयोगके वियोगका नाम 'योग' है। यदि दुःखके वियोगका नाम योग होता, तो इसका अर्थ होता कि निद्रा, मूर्च्छा एवं समाधिमें योग होता है। अथवा जब शत्रु मरेगा या कामना-पूर्ति होगी, तब योग होगा। लेकिन, ऐसा नहीं है। दुःख है, किन्तु; उसके संयोगका वियोग है। शरीरमें रोग भी है, सम्बन्धियोंका वियोग भी हो रहा है, धन-मान भी आता-जाता है, लेकिन इनका अपने ऊपर प्रभाव नहीं पड़ता। दुःख आपको जीवनमें छू न सके, इस विद्याका नाम 'योग' है।

आप अपने जीवनमें इस विद्याका-कुशलताका-कलाका उपयोग करना जानते हैं? आप अपने जीवनमें योगका उपयोग जानें-समझें-सीखें-करें। जैसे चिकित्सामें मुख्यतः दो अंग हैं-रोगनिवृत्ति और स्वास्थ्य-लाभ, ठीक वैसे ही पुरुषार्थके दो अंग हैं-दुःखनिवृत्ति और सुखावाप्ति। यदि आप अपने जीवनमें दुःख-संयोग-वियोग चाहते हैं, सुखी होना चाहते हैं और समत्वमें स्थित होना चाहते हैं, तो निश्चित रूपसे योगका उपयोग लाभदायक है। अतः सुखी-सम-जीवनके लिये योगका उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

उत्तम स्वभाव डालो

मेरी जानकारीमें एक बालक है। उसको दाँतसे अँगुली के नख काटते रहनेकी बुरी आदत पड़ गयी है। अँगुलीमें-से रक्त बहने लगता है; परन्तु, वह दाँतसे नख काटना छोड़ता नहीं है। समझानेसे मानता नहीं है। यदि उसके हाथपर नीमकी पत्ती पीसकर लगा दें, तो वह तुरन्त साबुनसे हाथ धो लेता है। अनेकानेक उपाय किये गये लेकिन वह बालक इतना अधिक अभ्यस्त हो गया कि अपनी इस बुरी आदतसे बाज ही नहीं आता है। नारायण! ऐसे ही, जब मनुष्यका स्वभाव बिगड़ जाता है, तब वह सरलतासे सुधरता नहीं है। शरीर और मनमें-कर्म और भोगमें अनजानमें ही कुछ ऐसा स्वभाव पड़ जाता है, जिसे छोड़ना आवश्यक होता है। बुरा स्वभाव छोड़नेमें थोड़ी लगनकी, थोड़े उत्साहकी आवश्यकता होती है। उत्तम स्वभाव डालनेमें थोड़ी आशाकी, प्रतीक्षाकी आवश्यकता होती है। जिस व्यक्तिका अभ्यास अत्यन्त दृढ़ बन जाता है, उसे अपना स्वभाव छोड़नेमें बहुत ही अधिक कठिनाई होती है।

जैसे मच्छर स्वयं शान्तिसे नहीं बैठता है और दूसरोंको भी काट-काटकर तंग करता है, ऐसे ही कुछ लोगोंके स्वभावमें दूसरोंको तंग करना, पीड़ा देना होता है। बुरा स्वभाव बोलने-करने-भोगने एवं वस्तुएँ इकट्ठी करनेका हो सकता है। पहले इन्हें छोड़ना चाहिए। जीवनमें बेमतलबका बोलना-करना है, जो अनावश्यक उपार्जन-मोह-परिग्रह है, उसे पहले छोड़ो। अपना स्वभाव ऐसा बनाओ कि जो कोई भी तुम्हारे पास आये, उसको तुम्हारे जीवनसे सुख-शान्ति-आनन्दकी उपलब्धि हो। जो दूसरेको कष्ट देना चाहता है, वह कष्ट उसीको ब्याज सहित मिलता है। यह शत-प्रतिशत निश्चित बात है।

नारायण! परहित मूलक चिन्तन करनेका अभ्यास करो। जबतक मनुष्य अपने मनको महत्ता देता रहेगा, तबतक दूसरेका मन उसका शत्रु बनकर उसे दुःख देता रहेगा। दूसरेको दुःख देनेवाली बात बोलना दुःसंकल्पसे होता है। दुःसंकल्प अपने विषयको पीड़ा नहीं देता है अपितु अपने आश्रयको ही पीड़ा देता है। दुर्वाणी अन्ततः वक्ताको ही कष्ट देती है। अतएव, अपनी वाणीको सुधारो। धीर गम्भीर-मधुर वाणीमें बोलनेकी आदत डालो। सुख-शान्ति-आनन्ददायक वचन बोलो। हित-कल्याण-मंगलकारी वाणी बोलो-

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद् भद्रमित्येव वासना।

'अपने मुखसे भला ही बोलना चाहिए और अपने मनसे भला ही सोचना चाहिए।'

'गौतमधर्मसूत्रमें' एक सूत्र है-

अभद्रं भद्रमिति ब्रूयात्।

'अमंगलको भी ऐसा बोलो कि यह भी मंगल है।'

देखो! जैसे यह स्थूल शरीर मिट्टी-पानी-आग-हवा-आकाशसे बना है, ऐसे ही यह अन्तःकरणमें वासनाएँ-ही-वासनाएँ हैं। वासना-वासित ज्ञानका नाम ही सूक्ष्म शरीर है। अन्तःकरणमें शुभ-वासना रहे, यही अन्तःकरणकी शुद्धि है। देखना यह है कि तुम्हारे जीवनकी मोटरका ब्रेक तुम्हारे हाथमें है या नहीं? प्रायः यह देखनेमें आता है कि

यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्तिसे कहे कि 'तुम्हें कोई बुरी आदत छोड़नेकी आवश्यकता नहीं है; मैं तुम्हें ऐसे ही समाधि लगवा देता हूँ अथवा ईश्वरसे मिलवा देता हूँ अथवा आत्म-साक्षात्कार करवा देता हूँ', तो वह व्यक्ति कहने वालेके बहकावेमें आ ही जाता है। अपनी बुरी आदतोंका अभ्यास इतना अधिक दृढ़ बन जाता है कि कोई शूरवीर ही अपने बुरे स्वभाव पर विजय प्राप्तकर उत्तम स्वभाव डाल सकता है। जो वासना-निवृत्ति-के मार्गपर चलता है, वही व्यक्ति समाधिस्थ अथवा स्वरूपस्थ होता है।

नारायण! अनियन्त्रित स्वच्छन्दता तो पशु-पक्षी, मछली-मक्खी, मच्छर-कीड़ोंको सदासे प्राप्त है। यदि तुम्हें इन्द्रिय-भोग अनियन्त्रित अथवा अमर्यादितरूपसे स्वतंत्र ही रखना है, तो तुम साधनाके क्षेत्रमें आये ही क्यों? क्रिया इच्छानुसार नहीं होनी चाहिए। क्रिया बुद्धिके शासनानुसार होनी चाहिए। तुम्हारा जीवन केवल ऐन्द्रियक तुष्टिका जीवन नहीं है। तुम्हारा जीवन सद्भावनाका-प्रेमका जीवन है। यदि तुम अपने जीवनका ठीक-ठीक संयम नहीं करोगे, तो पशुकी भाँति पतनके मार्गपर जाओगे। मानवोचित उन्नत-जीवनके लिए उत्तम स्वभाव डालना पड़ता है। पूरी लगन-उत्साहसे, आशा-प्रतीक्षासे, अभ्यास-प्रयत्नपूर्वक उत्तम स्वभाव डालो।

पहले समझदारी चाहिए

बचपनमें मैं एक महात्माके पास गया। सत्संग किया। वे बोले– 'मूर्खतासे साधन करनेसे साधनाका कोई फल नहीं मिलता है। पहले समझौती चाहिए।' एक मनुष्य मोटर चलाना तो जानता हो; किन्तु, यदि उसे मोटरकी मशीनकी जानकारी न हो, तो मार्गमें मोटर रुक जानेपर वह क्या करेगा? जैसे मोटरकी मशीनको जानने-समझनेवाला मोटरको ठीक-ठीक गन्तव्य तक पहुँचाता है, वैसे ही जो साधनाके रहस्यको जानता-समझता है, वह सफलता पाता है। बात समझमें आनी चाहिए कि शरीर-इन्द्रियाँ–मन बुद्धि कैसे काम करते हैं? जब समझदारीपूर्वक कार्य होता है, तब संकल्प पूर्ण होता है।

एक महाराष्ट्रीय केन्द्रीय अधिकारी पंजाब गये। पंजाबके अधिकारियोंका वेतन उनसे बहुत कम था। एक सरदारजी उनके पास गये और पूछा–'साहब! आप भी इन्सान हैं और हम लोग भी इन्सान हैं। फिर भी आपका वेतन हम लोगोंसे इतना अधिक क्यों है?' केन्द्रीय अधिकारीने कहा–यह अधिक वेतन मनुष्य शरीरका नहीं है; अपितु बुद्धिका है' सरदारजीने कहा–'साहब!' आपमें ऐसी क्या विशेष बुद्धि है? अधिकारीने एक क्षण सोचकर मेजपर हाथ रखा और कहा– 'सरदारजी! आप मेरे इस हाथपर पूरे जोरसे घूसा मारो।' सरदारजीने जोशमें आकर कसकर घूसा धमक दिया; किन्तु, अधिकारीने तो हाथ खींच लिया था। सरदारजीका घूसा मेजपर पड़ा। वे दर्दसे हाथ मसलने लगे। अधिकारीने विनयपूर्वक कहा–'सरदारजी! आप मेरी इस गुस्ताखीको माफ करें। मैं केवल आपको यह बताना चाहता था कि क्या काम कम करना और कब नहीं करना? कब हाथ बढ़ाना और कब बढ़ा हुआ हाथ खींच लेना? यही बुद्धिका काम है। इस विशेष बुद्धिके कारण ही मुझे आप लोगोंकी अपेक्षा अधिक वेतन मिलता है।' सरदारजीने कहा–'साहब! बिलकुल ठीक बात है। यह सचमुच बड़ी बुद्धिमानीका काम है।' यह कहते हुए सरदारजी विदा हुए।

भाई मेरे! समझदारी-पूर्वक अपना साधन-भजन करो और

अपने लक्ष्यको सफलतापूर्वक प्राप्त करो। 'योगवासिष्ठ'में महर्षि वसिष्ठजी कहते हैं–'श्रीराम! यह संसारकी वासना करोड़ों जन्मोंके अभ्याससे बनी है। अतः बिना बहुत दिनोंके साधनाभ्यासके यह कभी शान्त हो नहीं सकती है।'

जन्मकोटिसमभ्यस्ता राम संसारवासना।
न चिराभ्यासयोगेन विनेयं शाम्यति क्वचित्।।

अच्छा! देखो! समझो! एक साधना होती है, ईश्वरकी प्रधानतासे, एक अपनी प्रधानतासे और एक ईश्वर तथा अपनी एकताकी प्रधानतासे साधना होती है। ईश्वरकी 'तत्'–पदार्थकी प्रधानतासे जो साधना होती है, उसमें विधि–विधान एवम् दीर्घकाल आवश्यक नहीं है। गीतामें स्थान–स्थानपर निम्न वाक्य आये हैं–

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।
नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।

भक्तोंने कहा है–

सन्ध्यावन्दन भद्रमस्तु भवतो भो स्नान तुभ्यं नमोः
भो देवाः पितरश्च तर्पणविधौ नाहं क्षमः क्षम्यताम्।
यत्र क्वापि निषद्य यादवकुलोत्तसस्य कंसद्विषः
स्मारं स्मारमद्यं हरामि तदलं मन्ये किमन्येन मे।।

'सन्ध्यावन्द! तुम्हारा कल्याण हो। हे स्नान! तुमको नमस्कार! हे देवताओं और पितरों! मैं तर्पणपूजनमें समर्थ नहीं हूँ। मुझे आप सब क्षमा करें। चाहें जहाँ कहीं बैठकर, यदुकुलशिरोमणि कंसारिका स्मरण करके मैं अपने पाप नष्ट कर देता हूँ। यही मेरे लिए पर्याप्त है। दूसरे साधनोंसे मुझे क्या प्रयोजन?'

एक भक्त तो और आगे बढ़कर कहते हैं–

आम्नायाभ्यसनान्यरण्यरुदितं वेदव्रतान्यन्वहम्।
मेदश्छेदफलानि पूर्तविषयः सर्वं हुतं भस्मनि।।

यदि भगवान्‌में प्रीति नहीं हुई, तो प्रतिदिन नियमपूर्वक वेदपाठ वन्यरुदनके समान है। व्रत एवं पूर्तके सब काम केवल शरीरको दुबला मात्र

करनेवाले हैं और सब यज्ञ हवन भस्म में हवन करनेके समान व्यर्थ हैं।

नारायण! 'तत' पदार्थकी साधनामें ईश्वरकी प्रधानता होनेसे ईश्वर स्वयं भक्तका हाथ पकड़कर उसे उठा लेता है।

योगाभ्यासमें 'त्वं' पदार्थकी प्रधानता होनेसे जीव स्वयं ईश्वरको पकड़कर उठता है। 'त्वं' पदार्थ अर्थात् आत्माकी प्रधानतासे जो साधना होती है, उसमें पूरी श्रद्धा, पूरी विधि, पूरा प्रयत्न चाहिए। उसे दीर्घकालतक निरन्तर सत्कार-भावनासे करना चाहिए। आत्माकी प्रधानतासे जो साधन होता है, वह बिना पौरुष, बिना सत्कार-भाव, बिना दीर्घकालके सिद्ध नहीं होता है।

आजकल जो लोग शास्त्र, गुरु, सम्प्रदायके क्रमसे नहीं चलते, वे समझते हैं कि 'त्वं' पदार्थकी प्रधानता ही वेदान्तकी साधना है। लेकिन, वेदान्त तो 'तत्' पद वाच्यार्थ और 'त्वं' पद वाच्यार्थ-दोनोंमें वाच्यार्थ बाधित करके, लक्ष्यार्थकी एकता करके, अद्वयपदमें निष्ठा करता है। अतः साधनकी उच्चस्थितिको समझना आवश्यक है। समझदारीके बिना कोई साधन सफल नहीं होता है।

अच्छा! सत्संगके बिना विवेक नहीं होता और ईश्वर-कृपासे ही सत्संग सुलभ होता है। ईश्वर-अनुग्रहसे ही महात्माका सत्संग प्राप्त होता है और सत्संगसे बुद्धिमें विवेक जाग्रत् होता है। यदि आप ईश्वर-विश्वास, सत्संग और समझदारीके बिना कोई साधन-भजन करने चलोगे, तो या तो आप निद्राको समाधि मान लोगे या स्वप्नको भगवान्‌की लीला मान लोगे अथवा संयोगको चमत्कार समझ लोगे। अतएव, पहले साधन-भजनके सम्बन्धमें समझदारी प्राप्त करो; और फिर पूर्ण मनोयोगसे, श्रद्धा-विश्वासपूर्वक अपनी साधनामें संलग्न हो जाओ।

नारायण! जब ईश्वर-कृपा-अनुग्रहसे समझदारी पूर्वक साधन-भजन-कार्य सम्पन्न होता है, तब संकल्प पूरा होता है साधन सफल होती है और साधक अपने लक्ष्यको सफलतापूर्वक प्राप्त करता है। पहले समझदारी चाहिए।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

इच्छा-मात्र छोड़ो

सन् 1930-32 के लगभग मुझे एक लड़का मिला। उसका मुझसे प्रेम हो गया। उसका कहना था–'यदि मुझे भगवान्‌का दर्शन हो जाये, तो तुम्हें छोड़ दूँगा अथवा यदि मैं ध्यानमें तन्मय हो जाऊँ, तो तुम्हें छोड़ दूँगा, अन्यथा तुमको मेरे कहनेके अनुसार रहना होगा।' एक बार काशीमें एक गुफामें बैठकर उसने अनशन कर दिया। काशीके बड़े विद्वान् 'श्रीगौरीशंकरजी गोयन्दका'को समाचार मिला। वे स्वयं उसके पास गये। उन्होंने उसे समझाया। अपने घर ले गये। तार 'टेलीग्राम' देकर मुझे बुलाया। मैंने आकर उससे कहा–'तुम्हारे मनमें जो तीन इच्छाएँ हैं, उन्हें यदि तुम छोड़ दो, तो कोई-न-कोई बात बन ही जायेगी।' वह बोला–'छोड़ दी।' दस-पन्द्रह दिनोंके बाद वह मेरे पास आकर बोला–'मैंने दस-पन्द्रह दिनों तक अपनी तीनों इच्छाएँ छोड़ रखी थीं; लेकिन इतने समयमें कोई एक भी पूरी नहीं हुई। अतः अब मैं फिर इच्छा करता हूँ।' श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) आये। उन्होंने उसे अनुष्ठान बतलाया। उसने छह महीने अनुष्ठान किया। नारायण! वह कहता था–'मैं दस-पन्द्रह दिन इच्छाएँ छोड़ दी थीं', लेकिन, यह उसका भ्रम था। क्या वह सचमुच इच्छाएँ छोड़ सकता था? मनुष्यको भ्रम होता है कि 'मैं कुछ नहीं चाहता।' अपनी इच्छाओंको ठीक-ठीक समझना चाहिए। उन्हें ठीक दिशा देनी चाहिए। गंगाकी धाराको बाँधकर बन्द नहीं कर सकते, किन्तु बाँधकर मोड़ दे सकते हैं, अन्यथा बड़े-से-बड़े बाँधको धारा तोड़ देगी।

सन् 1916 में वर्षामें एक पर्वत गिरा और धौलीगंगाका प्रवाह रुक गया। थोड़े दिनोंमें जब पर्वतका बाँध तोड़कर पानी बहा, तब ऋषिकेशका वह टीला, जिसपर साधु रहते थे, बह गया। ऐसी ही इच्छाएँ प्रकृतिकी धारामें बहती हैं। यदि उन्हें सर्वथा रोक देना चाहोगे, तो असफल होओगे। इच्छाओंको बाँधकर मार्ग देना है, व्यक्तित्वमें जो अहं है, उसे यदि जड़से जोड़ोगे, तो जड़ बनोगे। चेतन ब्रह्मसे जोड़कर

चेतन बनोगे। प्रकृतिकी धारा काम-कर्मसे युक्त है और ब्रह्मस्वरूप काम-कर्म दोनोंसे विनिर्मुक्त है। हमारी साधन-पद्धति ब्रह्मस्वरूप मिलानेकी पद्धति है। इसके लिए ऐसी रीति चाहिए, जिसमें संन्यास और योग दोनों एक हो जाते हों। कर्मफल पर अनाश्रित होना दोनोंमें है।

एक व्यक्ति नित्य सूर्यको नमस्कार करता था। वह प्रार्थना करता था-'सूर्य भगवान्! मेरे घरमें प्रकाश कर दो।' उसका घर गलीमें था। वहाँ धूप नहीं पहुँचती थी। जब उसकी प्रार्थना पूरी नहीं हुई, तब उसने सूर्यको नमस्कार करना छोड़ दिया। वस्तुतः समस्त जगत्को प्रकाशित करनेवाले सूर्य भगवान्के प्रति कृतज्ञ होना ही सूर्य-नमस्कारका फल है।

मैं एक दिन ऋषिकेष स्वर्गाश्रममें गंगा-किनारे बैठा था। चाँदनी रात थी। एक मित्र मेरे पास आकर बैठ गया और बोला-'स्वामीजी! संसारमें किसीसे मेरी आसक्ति नहीं है। मुझे आनन्द चाहिए। इसके लिए आप जो आज्ञा करोगे, मैं वही करूँगा। यदि आप कहोगे, तो विवाह भी कर सकता हूँ और आपके कहने पर शरीर भी छोड़ सकता हूँ।' मैंने पूछा-'ईमानदारीसे कहते हो?' वह बोला-'स्वामीजी! पूरी ईमानदारीसे।' मैंने कहा-'यह आनन्द पानेकी इच्छा छोड़ दो।' वह बोला-'छोड़ दी'। अचानक उसके शरीरमें कम्प हुआ। नेत्रोंसे टपाटप आँसू गिरने लगे। रोमाञ्च हुआ। शरीरमें चमक आयी। वह समाधिस्थ हो गया। उठनेपर बोला-'मैं समझ गया कि आनन्द कैसा होता है।'

नारायण! नित्यप्राप्त शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मस्वरूपको त्यागकर अप्राप्त अनात्मवस्तुको चाहनेका नाम ही मृत्यु है। यही असत्-अचित्-दुःख है। हमारे मनमें प्राप्त वस्तुका तिरस्कार करके अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिका जो संकल्प है, वही हमारे जीवनको दुःखी-अज्ञानी-जड़ बनाये हुए है। अपने आनन्दस्वरूप पर इच्छाका ही पर्दा है। इच्छाएँ ही आनन्दकी आच्छादिका हैं। इच्छा-मात्र छोड़ो और आनन्द ब्रह्मानुभूति करो।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

ईश्वर-भजन करो

जब मैं गाँवमें था, तब मैंने एक महात्मासे दीक्षा ली। दीक्षा देकर बोले–'बेटा! अब तुम मुक्त हो गये हो!' मैंने कहा–'महाराज! अब जब मैं आपकी कृपासे मुक्त हो गया हूँ, तब मुझे भजन करनेकी क्या आवश्यकता है? महात्मा मुस्कराकर बोले–'बेटा! कालका पेट भरनेके लिए भजन करना है। हम भगवन्‌से भजनका फल मुक्ति नहीं चाहते हैं। आत्मा तो नित्य-मुक्त है। काल-क्षेप हेतु भजन करना है। अपने जीवनके एक-एक क्षणको उत्तम कर्मसे भरते जाना है। अब तुम भजनमें ही अपना समय व्यतीत करो।' यों कहकर मस्तीसे गुनगुनाने लगे–

उमा कहहुँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजन जगत सब सपना।।
उमा राम स्वभाव जेहि जाना।
ताहि भजन तजि भाव न आना।।

एक व्यक्तिने एक ईश्वर-भक्तसे पूछा–'तुम ईश्वरका भजन क्यों करते हो? भक्त बोला–'मित्र! क्या करूँ? भजनके बिना रहा ही नहीं जाता है। भजन करनेका स्वभाव बन गया है।'

नारायण! मनुष्यको ईश्वरके भरोसे हो जाना चाहिए। अपने

अहंका बलिदान कर देना चाहिए। अपनी ममताके कोष्ठमें अपने प्यारे प्रभुको प्रतिष्ठित करना चाहिए। खूब प्रेमसे अन्तर्यामी-ईश्वरका भजन करो और अपने मानव-जीवनको सार्थक करो। यदि इस सुनहले मौकेका लाभ नहीं उठाया, तो जानते हो क्या हालत होगी।? '**भजन बिनु बैल बिराने होइबै।**' कोल्हूके बैलकी तरह दिन-भर जोते जाओगे और थककर चकनाचूर हो जाओगे। पशुवत् पराधीन जीवन-यापन करोगे। '**पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।**'

यदि सुख चाहतो हो, तो सुखस्वरूप ईश्वरका भजन करो। प्रेमपूर्वक हरि-स्मरण करो। देखो! हरि तुम्हारे भवभयका हरण कर लेंगे और तुम्हारा वरण करके तुम्हें अपने अभयपदमें प्रतिष्ठित करेंगे। ईश्वर जब प्रसन्न होता है न, तब वह अपने आपको ही दे देता है! तुम्हारे हृदयको ही अपना घर बना लेता है। भक्तके हृदयका मालिक भगवान् होता है। ईश्वर ही अपने भक्तका योग-क्षेम करता है। भक्त तो अपने प्यारे-हृदयेश्वरके भजनमें तल्लीन रहता है। ईश्वर-भजन करो और मस्त-निश्चिन्त रहो!

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

अभ्यासकी आवश्यकता

अपनेको नियन्त्रित करना बहुत कठिन है। जिसने स्वयं अपने शरीर, मन, इन्द्रियोंको अपने नियन्त्रणमें ले लिया, वह अपना हितकारी बन्धु है। जिसने अपने आपको नियन्त्रणमें नहीं लिया, उसका जीवन स्वयं उसके लिए शत्रु हो जाता है। यह ठीक है कि– '*अति ही कठिन है निगम-पथ चलिबो,*' लेकिन जीवनमें अभ्यासकी बड़ी भारी महिमा है।

'मैं देह हूँ'–यह भी एक अभ्यास ही है। लोहेसे लोहा कटता है। हीरेसे हीरा कटता है। अभ्याससे देहाध्यासका अभ्यास कटता है। अभ्याससे क्या साध्य नहीं है? आशा रखो। निराश मत होवो। प्रयत्न करते रहो। विकार स्वयं होते हैं और संस्कार करना पड़ता है। पसीना स्वयं आता है; किन्तु उसे धोना पड़ता है। अब देखना यह है कि तुम स्वयं अपने विषयमें कितने सावधान हो? जो संस्कार नहीं करता है और अपने विषयमें सावधान नहीं है, वह स्वयं अपनी हानि कर लेता है।

अभ्यासका अर्थ है–दुहराना। एक काम–एक चिन्तन निरन्तर दीर्घकाल तक सत्कार-बुद्धिसे दुहराते रहनेसे जीवनका अंग बन जाता है। एक सत्पुरुष थे। उनके घर भैंसने बच्चा दिया। उस दिन उस बच्चेको उन्होंने गोदमें उठाया। तभी उनके मनमें आया–'इसे प्रतिदिन उठावेंगे।' अब वे प्रतिदिन उस बच्चेको गोदमें उठाने लगे। बच्चेको भी अभ्यास हो गया। वह उनके उठानेमें बाधा नहीं देता था। बच्चा बढ़ते-बढ़ते भैंस बन गया; किन्तु; वे उसे प्रतिदिन उठाते रहे। अतः भैंस बन जानेपर भी उठा लेते थे। यह शक्ति उनमें प्रतिदिन अभ्यास करनेसे आयी। अतः जीवनमें अभ्यासकी आवश्यकता है। अभ्यास कठिन-से-कठिन कार्यको सुगम-से-सुगम कर देता है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

भगवत्कृपा, महात्माकृपा

प्रश्न उठता है–आत्म साक्षात्कार करनेमें क्या भगवान्‌की कृपाकी जरूरत होती है?

नारायण! मनुष्य-शरीर मिलनेमें ही भगवन्‌की बहुत-बहुत कृपा है; अन्यथा हम भी चिड़ियाकी तरह बिना हाथके, पशुकी तरह चार पाँवके होते और मुँहसे ही खाते। अनादि कालसे संचित कर्ममें-से ऐसा प्रारब्ध निकालकर दे दिया, जिससे मनुष्य सत्कर्म करनेवाला हो गया, बुद्धिमान् एवं आनन्दित हो गया। यह भगवान्‌की बड़ी भारी कृपा ही तो है। मनुष्यका शरीर धर्माचरण करनेके लिए है। अन्य किसी योनिमें धर्माचरण नहीं होता है। मनुष्य शरीर नये-नये आविष्कार करनेके लिए है। आनन्द देने व परमानन्दकी प्राप्तिके लिए है।

कबहुँक करि करुणा नर देही।
देत ईश बिनु हेतु सनेही।।

मनुष्य-शरीरका मिलना भगवान्‌की करुणाका परिचायक है। जब इसमें सत्‌पुण्य परिपाकसे भगवान्‌की कृपा होती है, तब मुमुक्षाका उदय होता है कि 'मैं मुक्त हो जाऊँ' और फिर, महापुरुषका संग मिलता

है। महापुरुषसे मिलकर ईश्वर 'डबल' हो जाता है, ऐसे तो ईश्वर 'सिंगल' रहता है। ईश्वर और महापुरुष–दोनोंके मिलनेपर महत्त्व आ जाता है और इससे उद्धारकारिणी शक्ति प्रकट हो जाती है। यदि आप महापुरुषके सामने निष्कपट रूपसे अपनी आत्मा खोल दोगे, तो महापुरुष भी निष्कपट भावसे अपनी आत्माको आपके सामने खुल्ला कर देगा। आप देखोगे कि आपमें और महापुरुषमें जो आत्मा है, वह एक ही है। एक अद्वितीय आत्मतत्त्व ही दो रूपोंमें अभिव्यक्त हो रहा है। अतएव महापुरुषका संग मिलनेतक तो भगवान्‌की कृपाकी जरूरत रहती है। उसके बाद भगवान्‌की कृपाके बिना ही तत्त्वज्ञान हो जायेगा, मुक्त हो जायेगा; क्योंकि महात्मामें भगवान् सन्निहित है। भगवान्‌की कृपा यही है कि महात्मा मिले।

एक बात यह है कि मोक्ष मिलनेके बाद भगवान् और भगवान्‌की कृपा बनी रहेगी, तो एक प्रकारका बन्धन बना रहेगा। एक प्रकारकी पराधीनता बनी रहेगी। अतः तत्त्वज्ञान होनेके बाद भगवान् भी अपने बन्धनसे मुक्त कर देते हैं। पराधीनतासे सर्वथा मुक्ति तत्त्वज्ञानके द्वारा होती है। तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति महात्माके मिलनेपर और उनकी निष्कपट सेवा करनेपर होती है। महात्माका मिलन भगवान्‌की कृपासे होता है। नारायण! अन्तःकरण शुद्धि होने तक भगवान्‌की कृपा काम करती है। आत्मसाक्षात्कार करनेमें महात्माकी कृपाकी जरूरत होती है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

वेदान्त-श्रवण

प्रश्न उठता है–क्या वेदान्त-श्रवण पापोंसे मुक्ति दिलानेमें सहायक है?

नारायण! यदि आपको 'लेबोरेटरी'में कोई वैज्ञानिक आविष्कार करना हो तो उस समय आपका मन चंचल हो या गुस्सेमें हो या किसीको मार डालनेका हो या किसीकी कामनामें आसक्त हो या लोभसे ही ग्रसित हो तो आप कोई नया आविष्कार उस समय नहीं कर सकते हैं। जब आपका मन दूसरी जगह लगा हुआ है अथवा निद्रा-आलस्य व प्रमादसे ग्रसित हो रहा है, तब आप कोई नवीन आविष्कार नहीं सर सकते हैं। इसी प्रकार, परमात्माके बारेमें श्रवण करते समय, यदि आप स्त्री-पुत्र या धन-सम्पदाका चिन्तन करते रहेंगे तो श्रवणमें आपकी बुद्धि प्रवेश ही नहीं करेगी।

अच्छा! एक बात और है। वेदान्तमें श्रवण माने सिर्फ कानसे सुनना नहीं है। यह शब्द पारिभाषिक है। 'श्रवण' माने बुद्धिका एक निश्चय। श्रुतिरूप प्रमाणके द्वारा आत्मा और ब्रह्मकी एकताका दृढ़ निश्चय। उपक्रम-उपसंहारकी एकता, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति–उनके द्वारा सम्पूर्ण श्रुतियोंका तात्पर्य आत्मा

और ब्रह्मकी एकतामें है, ऐसा निश्चय करना वेदान्तका श्रवण है। अधिकारी हुए बिना यह निश्चय होगा ही नहीं। केवल कानसे सुननेका नाम वेदान्त-श्रवण नहीं है। जब संसारी काममें, कानून समझनेमें, डॉक्टरी समझनेमें, विज्ञान समझनेमें मन लगानेकी जरूरत होती है, तब सिर्फ कानसे वेदान्त सुननेसे बात नहीं बनेगी।

हाँ! एक बात तो निश्चित है कि श्रवण भी पुण्य कर्म है। वह बिलकुल बेकार नहीं जाता। मन पवित्र नहीं हो, तब भी आप रोज-रोज सुनिये। यदि सत्संगमें जाकर बैठनेसे नींद आ जाती हो, तब भी रोज वहाँ जाकर बैठिये और सुनिये। श्रवण स्वयंमें एक ऐसा पुण्य है कि केवल श्रवणमात्रसे ही धीरे-धीरे आपके पूर्व जन्मके और इस जन्मके समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे। आपका अन्तःकरण शुद्ध हो जायेगा। पापी-से-पापी व्यक्ति भी श्रवण करेगा, तो उसका भी कल्याण होगा। मान लो कि दुनियाँमें करोड़ों-अरबों अनगिनत पापी हैं। अब उनमें-से तीन सबसे बड़े पापी छाँट लो। अब तीनमें-से एकसे बड़ा दूसरा, दूसरेसे बड़ा तीसरा छाँट लो। अब उस तीसरेको ले लो और मान लो कि वही तुम हो। इसका मतलब यह हुआ कि तुमसे बड़ा पापी कोई नहीं है। पापकृत-पापकृततर-पापाकृततम-जिससे बड़ा पापी और कोई नहीं। यदि वह भी ज्ञान की नौकापर आकर बैठ जाये तो सारा-का-सारा पाप भली-भाँति पार कर जायेगा। अपने स्वरूपका ज्ञान प्राप्त कर पापोंसे मुक्त हो जायेगा।

एक बात आपको सुनाते हैं। किसीका भी पाप देखकर-चाहे वह पूर्वजन्मका हो, चाहे इस जन्मका हो, चाहे सूखा (पुराना) हो, चाहे गीला (ताजा) हो, चाहे बड़ा हो, चाहे छोटा हो-आप उसके प्रति बिलकुल निराश न हों। आप पूर्ण आस्था रखें कि एक दिन ऐसा भी आयेगा, जब उसका पाप नष्ट हो जायेगा और वह परमात्माकी प्राप्तिके योग्य हो जायेगा। किसी भी आदमीके पूर्व कर्म या वर्तमान कर्मको देखकर उससे घृणा मत कीजिये। उससे द्वेष मत कीजिये। उसको नीचा मत समझिये। एक दिन वह भी वैसे ही चमक जायेगा, जैसे कोई

महात्मा चमकता है। सबके भीतर एक ही परमात्मा है। किसीको भी नीच-दीन-हीन या परमार्थके अयोग्य समझना भ्रम है। यह भ्रम निकाल दीजिये।

गिद्ध अधमतर आमिष भोगी,
गति पाई जेहि जाँचत योगी।

जब गणिका तर जाती है, अजामिल तर जाता है, गिद्ध तर जाता है, तब आप अपने कल्याणके बारेमें शंका मत कीजिये। आप अपने बारेमें भले ही शंका कीजिये, लेकिन दूसरेके कल्याणके लिए शंका करनेका कोई भी कारण नहीं है। आप दूसरोंको नीच मत समझिये। जो परमात्मा आपमें है, वही दूसरोंमें है। पापका दर्शन-चिन्तन मत करिये- न अपनेमें न ही दूसरेमें। वेदान्तका श्रवण कीजिये। आज नहीं तो कल, तल नहीं तो परसों, परसों नहीं तो नरसों, आप वेदान्त-श्रवणके अधिकारी बनेंगे। आपकी बुद्धिमें यह योग्यता आयेगी कि वह श्रुति प्रमाणके आधारपर आत्मा और ब्रह्मकी एकताका दृढ़ निश्चय प्राप्त कर सके। श्रवण अन्तरंग साधन है। वेदान्त-श्रवण करो। अपने अद्वितीय-असंग-सच्चिदानन्दघन परब्रह्म स्वरूपका अनुभव प्राप्त करो।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

व्याप्य-व्यापकता

व्यापकताको भी समझना चाहिए। एक व्यापकता होती है–लोहेके गोलेमें अग्निके समान। यदि लोहेके गोलेको अग्निमें डाल दें और वह लाल हो जाये तो कहेंगे 'लोहेके गोलेमें अग्नि व्याप्त हो गयी।' इसमें लोहेका गोला अन्य और अग्नि अन्य है। यहाँ अन्यमें अन्य व्यापक हुआ। इसी तरह, संसारकी वस्तुओंमें ज्ञानस्वरूप परमात्मा व्याप्त है। साधारण जन यही अर्थ समझता है कि संसार लोहेका गोला है और परमात्मा अग्निके समान व्याप्त है।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

एक व्यापकता यह है। इसे 'मूर्तसंयोगित्वरूप' व्यापकता कहते हैं। अर्थात् स्थूल वस्तुमें कोई सूक्ष्म वस्तु व्याप्त हो रही है। लेकिन, वेदान्तमें, 'व्यापक' शब्दका प्रयोग इस अर्थमें नहीं होता है।

वेदान्तमें 'व्यापक' शब्दका प्रयोग इस अर्थमें होता है–जैसे कार्यमें उपादान व्याप्त है। घड़ा कार्य और मिट्टी उपादान है। घड़ेमें मिट्टी व्याप्त है। अर्थात् घड़ा मिट्टीरूप ही है। मिट्टीमें केवल कुछ आकार बन गये–घड़ा, सकोरा, कुल्लढ़ इत्यादि। व्याप्त और व्यापक अलग-अलग वस्तु नहीं हैं। अर्थात् जब कारण ही कार्यमें अनुस्यूत होता है, तब उसे व्यापक कहते हैं। लेकिन, शांकरवेदान्तमें, यह व्यापकता भी मुख्य रूपमें स्वीकार नहीं की जाती है।

शांकरवेदान्त जो व्यापकता मानता है, वह दूसरी ही है। वह व्यापकता ऐसी है, जैसे प्रतीयमान सर्पमें रज्जु व्याप्त होती है। अब आप दृष्टान्तोंका क्रम प्रारम्भसे देखो! जब मिट्टीका दृष्टान्त देते हैं, तब कहते हैं–जैसे घड़ेमें मृत्तिका व्याप्त है। जब जलका दृष्टान्त देते हैं, तब कहते हैं–जैसे तरंगोंमें जल व्याप्त है। अग्निके दृष्टान्तमें कहते हैं–जैसे चिन्गारी अथवा ज्वालामें अग्नि व्याप्त है। वायुके दृष्टान्तमें कहते हैं–जैसे प्राण वायुमें वायु व्याप्त है। आकाशके दृष्टान्तमें कहते हैं–जैसे घटाकाशमें महाकाश व्याप्त है। देशके दृष्टान्तमें कहते हैं; जैसे उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम सबमें दिक्तत्व व्याप्त है। भेद कल्पित हैं। दिशा एक है; क्योंकि सर्वत्र सब है। कालके दृष्टान्तमें कहते हैं जैसे भूत-

भविष्य-वर्तमान सबमें काल व्याप्त है। त्रित्व कल्पित है। एकत्व अधिष्ठानकी सत्तासे सत्तावान् है। यह पंचमहाभूतोंकी बात हुई।

अब इसके आगे चलो। स्वप्नके दृश्योंमें मन व्याप्त है। मनोरथके पदार्थोंमें मन व्याप्त है। मनसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है। यह मनकी व्यापकता हुई। जाग्रत् और स्वप्नमें जितने भी नाम-रूप दिखायी पड़ते हैं, वे सब-के-सब बीज रूपसे सुषुप्तिमें होते हैं। अतः सुषुप्ति हुई बीजात्मिका-संस्कारात्मिका। सुषुप्ति है स्थित। अतः अपनेमें संस्कार रूपसे वह जाग्रत् एवं स्वप्नके सम्पूर्ण पदार्थोंमें व्याप्त है। यह स्थितिका दृष्टान्त हुआ।

इसके आगे भ्रान्तिका दृष्टान्त है। जैसे रज्जुमें सर्प प्रतीत होता है अथवा जैसे आकाशमें नीलिमा प्रतीत होती है। जैसे प्रतीयमान सर्पमें उसका अधिष्ठान रज्जु व्याप्त है या जैसे प्रतीयमान नीलिमामें उसका अधिष्ठान आकाश व्याप्त है, वैसे ही प्रतीयमान सम्पूर्ण चराचर सृष्टिमें उसका अधिष्ठान ब्रह्म व्याप्त है। रज्जु-सर्प निरुपाधिक भ्रमका दृष्टान्त है। रज्जुरूप अधिष्ठानका ज्ञान होनेपर सर्पकी प्रतीति नहीं होती है। आकाश-नीलिमा सोपाधिक भ्रमका दृष्टान्त है। आकाश रूप अधिष्ठानका ज्ञान होनेपर भी जब तक नेत्र रहेंगे, तब तक नीलिमाकी प्रतीति होती रहेगी। वस्तुतः रज्जु और आकाश भी कल्पित अधिष्ठान हैं। वास्तविक अधिष्ठान तो ब्रह्मचैतन्य ही है।

ब्रह्म और विश्वकी व्यापकता ऐसी नहीं है कि एक भिन्न वस्तुमें कोई दूसरी भिन्न वस्तु व्याप्त हो रही हो। ब्रह्म ही विश्व रूपमें प्रतीत हो रहा है। यही कार्य-कारण भी बन रहा है। यही प्रतीयमान कार्यमें प्रतीयमान कारणके रूपमें व्यापक ज्ञात हो रहा है। वास्तवमें ब्रह्ममें व्याप्त-व्यापकता नहीं है। दिखलायी पड़ रही इस समस्त स्थावर-जंगम सृष्टिमें एक अद्वितीय परब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण है। दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है। इसीलिए 'तेजोबिन्दूपनिषद्'में व्यापकताके भावको मिथ्या बताता गया है।

'व्याप्य-व्यापकता मिथ्या।'

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

उपाय-उपेय

यह '**उपाय-उपेय**' वैष्णवोंकी भाषामें बोला जाता है। किसी वस्तुकी प्राप्तिके लिए जो कुछ किया जाता है, उसे '**उपाय**' कहते हैं। उस उपायके द्वारा जो कुछ प्राप्त किया जाता है, उसे '**उपेय**' कहते हैं। 'उपाय' शब्दका अर्थ है–'**उपादायापि ये हेयाः**' अर्थात् पहले जिसको स्वाकार कर लें और फिर उसका त्याग कर दें। उदाहरणार्थ– नदी पार करनेके लिए नावका सहारा लिया। नदी पार करनेके बाद नावको छोड़ दिया। नदी पार करनेके लिए नाव एक उपाय मात्र थी। अच्छा! और देखो! ज्ञान प्राप्त करनेके लिए गुरु बनाया। जब ज्ञान प्राप्त हो गया, तब गुरु को छोड़ दिया। ज्ञान प्राप्त करनेके लिए गुरु एक उपाय मात्र था। भगवत्प्राप्तिके लिए बहुतसे साधन किये। जब भगवत्प्राप्ति हो गयी, तब सब साधन छोड़ दिये। जो साधन भगवत्प्राप्तिके बाद छोड़ दिये जाते हैं, वे भगवत्प्राप्तिके उपाय कहलाते हैं। भगवान्, जिन्हें प्राप्त किया जाता है, उपेय कहलाते हैं। जहाँ दोनों एक होते हैं, वहाँ शरणागति होती है। शरणागतिकी विशेषता यह है कि इसमें भगवान् ही उपाय हैं और भगवान् ही उपेय हैं।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

पन्द्रह-सोलह शब्द और अस्पताल

मैंने पहले कहीं पढ़ा था कि विदेशमें एक घोड़ा शिक्षित किया गया था। उसको सोलह प्रश्नोंका उत्तर देना आता था। उसको सोलह ऐसे शब्द याद थे, जिनके द्वारा वह अपने पाँवसे धरती पर लिखकर उन सब प्रश्नोंका उत्तर दे देता था। वह विदेशी घोड़ा इतना सुशिक्षित था। ठीक उसी तरह, हम वेदान्ती लोग भी पन्द्रह-सोलह शब्दोंको याद रखते हैं और उन्हीं-से सब प्रश्नोंका उत्तर दे देते हैं। यदि कोई हमसे कहे कि यह शब्द-अधिष्ठान, अधिकरण, आभास, प्रतिबिम्ब, अवच्छिन्न, अध्यास, अभ्यास, माया, उपाधि, निष्ठा, अनिर्वचनीय इत्यादि छोड़ दो, तो हम ठन-ठनपाल हो जायेंगे। हमारा सारा ज्ञान इन्हीं पन्द्रह-सोलह शब्दोंमें निहित है। हम घुमा-फिराकर इन्हींको ही बोलते रहते हैं। हमारी भाषा समझनेवालेको हमरी बात आसानीसे समझमें आ जाती है। हमारी भाषा नहीं समझनेवालेको हमारी बात समझनेमें थोड़ी कठिनाई होती है।

आपको एक विदेशी घोड़ेकी बात सुनायी। आओ! घोड़ेकी एक और बात सुना देता हूँ। किसी महाराजधिराजके पास एक बहुत सुशिक्षित घोड़ा था। एक बार उसपर चढ़कर महाराजाधिराज कहीं जा रहे थे। रास्तेमें गिर पड़े। चोट लग गयी। घोड़ा सुशिक्षित था। महाराजाधिराजको गिरा हुआ देखकर घोड़ा उनकी ओर पीठ करके बैठ गया। वे सरककर घोड़े पर चढ़ गये। जब वे बैठ गये, तब वह उन्हें अस्पताल ले गया। जानते हो किस अस्पतालमें ले गया? उस अस्पतालमें, जिसमें घोड़ेको चोट लगनेपर ले जाया जाता था। ठीक उसी तरह, हमारी शिक्षाका भी यही ढंग है कि आपको घुमा-फिराकर अपने ही अस्पतालमें ले जायेंगे। हम आपके सब प्रश्नोंका उत्तर देंगे और आपकी सब समस्याओंका समाधान करेंगे। हम आपकी सभी चोटोंका उपचार करेंगे। सभी जख्मोंका इलाज करेंगे। जानते हो कैसे और कहाँ? नारायण! वही पन्द्रह-सोलह शब्द और वही अस्पताल।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

शुद्धि और ज्ञान

सिद्ध वस्तु साधन-साध्य नहीं है। साधनके द्वारा अन्तःकरणके मल और विक्षेपरूप दोषोंकी निवृत्ति होती है। आवरण-भंग तो 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यजन्य चरमावृत्ति द्वारा ही होता है।

जो परमात्मा यहीं, अभी और प्रत्यक्चैतन्यके रूपमें ही विद्यमान है, उसकी अप्राप्तिका एकमात्र कारण है-अज्ञान। उस अज्ञानकी निवृत्तिका एकमात्र उपाय है-ब्रह्मात्मैक्यज्ञान। अन्य समस्त परम्परा प्राप्त बहिरंग और अन्तरंग साधन इस ब्रह्मज्ञानके उदयमें सहायक होनेसे ही उपादेय हैं।

साधनाके द्वारा व्यक्तिगत परमोत्कर्ष होता है। सिद्ध वस्तुका बोध होनेपर परिच्छिन्न व्यक्तित्व बाधित हो जाता है। सम्पूर्ण परिच्छिन्नताओं और उनके अभावसे उपलक्षित ब्रह्म अपना आत्मा ही है, इस ऐक्य ज्ञानको ब्रह्मज्ञान कहते हैं।

ब्रह्मज्ञान होनेपर ब्रह्मसे पृथक् एक कण भी नहीं है। विवेक करते समय यह बात कही जाती है कि ब्रह्म स्थूल, सूक्ष्म, कारण-सबसे विलक्षण है। ब्रह्मबोध होनेपर तो एक अद्वय आत्मवस्तुके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। न ईश्वर है, न जगत् है और न जीव ही है। ईश्वरकी अन्यता, जगत्का सत्यत्व और आत्माकी परिच्छिन्नता-ये तीनों ही ब्रह्मबोधसे बाधित हो जाते हैं। अतएव, तत्त्वज्ञ महापुरुषकी दृष्टिमें यह जो कुछ भी दीख रहा है, वह सब सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है। यह सम्पूर्ण सृष्टि ज्योंक-की-त्यों निर्विकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

अपरोक्ष ज्ञानकी रीति

उसी वस्तुका अपरोक्ष ज्ञान होता है, जिसके साथ हम अभिन्न हो जाते हैं। जिससे हम एक नहीं होंगे, उसका ज्ञान ही नहीं हो सकता। यहाँ तक कि जब हम घड़ेसे एक हो जाते हैं, तब हम घड़ेको जानते हैं। जब प्रमातावच्छिन्न अर्थात् अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य प्रमाणवृत्तिरूप नलिका द्वारा प्रमेयावच्छिन्न चैतन्यसे एक होता है, तब प्रमेयका ज्ञान होता है। जैसे पानी नालीके द्वारा एक स्थानसे खेतमें जाकर खेतकी क्यारीमें व्याप्त हो जाता है; वैसे ही, जब हमारा चैतन्य वृत्त्यारूढ़ होकर प्रमेयदेशमें जाकर प्रमेयावच्छिन्न चैतन्यसे एक हो जाता है, तब ज्ञान होता है। प्रमेयावच्छिन्न चैतन्यसे एक हुए बिना प्रमेयका बोध नहीं हो सकता है।

इन्द्रियवृत्ति विषयमें जाये अथवा विषय इन्द्रियवृत्तिमें आये–इस विवादमें न पड़कर यह जानना आवश्यक है कि वृत्तिके विषयाकार हुए बिना विषयका ज्ञान नहीं होता है। अर्थात् वृत्तिस्थ विषयका ही ज्ञान होता है। जब वृत्ति विषयाकार होती है अर्थात् जब विषय वृत्तिस्थ होता है, तब स्वयं ही बिना किसी प्रयासके वृत्यवच्छिन्न चैतन्य ही विषयावच्छिन्न चैतन्य है। वही दोनोंकी एकता है; क्योंकि, वृत्ति और विषय दो देशोंमें नहीं है। वृत्ति और देश भी दो नहीं है। केवल दो–तीन रूपोंमें देश–काल–विषयकी स्फुरणा ही हो रही है। इसका अभिप्राय यह है कि अधिष्ठान दृष्टिसे वृत्ति–देश–काल–वस्तु सब प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्मका ही स्फुरण है।

जिससे हम एक न हो जायें, उसको समझ नहीं सकते। वह अपनी कोई–न–कोई बात छिपाकर रखेगा। इसी प्रकार, जब तक हम ब्रह्मसे एक नहीं हो जाते, तबतक ब्रह्मका ज्ञान नहीं होगा। जबतक ब्रह्मज्ञान नहीं होगा, तबतक बन्धनकी भ्रान्ति निवृत्त नहीं होगी। यदि अविद्याकी निवृत्ति नहीं होगी, तो मोक्ष दूर है–यह सिद्ध है। अतः यदि परब्रह्म परमात्माका ज्ञान प्राप्त करना है, तो अपने व्यक्तित्वको छोड़कर परमात्मासे एक होना पड़ेगा। अपरोक्ष ज्ञानकी यही रीति है। परब्रह्म परमात्माको आत्मासे अभिन्न रूपमें, प्रत्यक्–चैतन्यके रूपमें ही स्मरण करते हैं। ऐसा न हो, तो उसकी अपरोक्षता कभी नहीं होगी।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

व्यक्तित्व

यह व्यक्तित्व क्या है? व्यक्तित्व अर्थात् परिच्छिन्नत्व। यदि अपनेमें परिच्छिन्नत्वकी कल्पना न हो, तो प्रपञ्चका भान नहीं होगा। ज्ञानेन्द्रियोंसे शब्द-रूपादि प्रपञ्चका ज्ञान होता है। कर्मेन्द्रियोंसे उचित-अनुचित क्रिया होती है। प्राणोंसे चेष्टा होती है। मनसे नाम रखे जाते हैं। अनुकूल-प्रतिकूल संस्कारयुक्त बुद्धिसे धर्म-अधर्म कल्पित हो जाते हैं। यह सब कहाँ है? व्यक्तित्वमें। व्यक्तित्वका मूल क्या है? दृश्यमान अनात्मामें आत्मत्वका भ्रम। भ्रमका मूल क्या है? अपने स्वरूपका अज्ञान। वस्तुतः यह अज्ञान कुछ भी नहीं है। परन्तु जबतक व्यक्तित्वमें अहंभाव है, तबतक ऐसी प्रतीति होती है कि 'मैं अपने को ब्रह्म नहीं जानता हूँ।' प्रतीति चाहे जो भी हो, उसका विषय मिथ्या ही होता है। अज्ञान निवर्तक होनेसे ही ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान उपयोगी है। अन्यथा, अपने स्वरूपमें ज्ञानाज्ञानका भेद भी कल्पित ही है।

अज्ञान दशामें, व्यक्तित्वकी शुद्धि आवश्यक है। वह शुद्धि क्या है? व्यक्तित्वकी शुद्धि यह है कि विवेकसे देखनेपर जिस-जिसका मैं साक्षी हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। न वह सुख है, न चेतन है और न तो उसकी अबाधित सत्ता ही है। जब दृश्यका कोई सत्त्व-महत्त्व ही नहीं है, तब उसके प्रति राग-द्वेषका कोई प्रयोजन नहीं है। राग-द्वेष

शिथिल हुए। बस! निश्चिन्त! दृश्यके सम्बन्धमें कुछ भी धारणा-ध्यान करनेकी आवश्यकता नहीं है। हो सो हो। दिखे सो दिखे। अपनेको व्यक्तित्वके कारागारसे मुक्त करनेके लिए मुमुक्षापूर्वक सद्गुरुसे अखण्डार्थका श्रवण-मनन कर लीजिये। विरक्त मुमुक्षु एवं तीव्र जिज्ञासुके लिए वेदान्तका श्रवण मात्र ही पर्याप्त है। संशयालुके लिए मनन तथा विपर्ययीके लिए निदिध्यासनकी आवश्यकता होती है।

तत्त्वज्ञानके द्वारा अविद्याकी निवृत्ति हो जानेपर व्यक्तित्त्वका क्या होता है? वह स्वाप्निक व्यक्तित्वके समान रहता है। वह केवल प्रतीति-समकालिक ही है। न आगे, न पीछे; न निकट, न दूर; न स्व, न अन्य। व्यक्तित्व माने केवल प्रतीति। स्वप्न-पुरुषमें कौन-से गुण रहें और कौन-से दोष न रहें? स्वप्न-पुरुषका पूर्व-जन्म कैसा था? उत्तर-जन्म कैसा होगा?-यह सब निरर्थक प्रलाप है। इस प्रलाप-संलापमें रस लेनेपर विलापका अपलाप नहीं होगा। अतः व्यक्तित्व केवल स्वाप्निक व्यक्तित्वके समान ही प्रतीत होता है। उसके लिए चिन्ता-सन्तापके सूत्रसे व्यर्थ जाल बुननेकी प्रवृत्ति, जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुख अथवा परम व्यक्तित्वका ही चमत्कार है। कोई भी विशेष या भेद केवल व्यक्तित्वका ही चमत्कार है। अधिष्ठान चेतन आत्मासे पृथक् व्यक्तित्वका कोई भी अस्तित्व नहीं है।

आत्मैवेदं सर्वम्;
ब्रह्मैवेदं सर्वम्;
स एवेदं सर्वम्;
अहमेवेदं सर्वम्।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

प्रेमका सर्वोत्तम रूप

प्रेमका सर्वोत्तम रूप समरसता ही है। एकाङ्गी प्रेम केवल प्रेमकी पूर्वावस्था है। उसमें व्याकुलता है; अभाव है और सामनेका कोई आकर्षण नहीं है। चातक, चकोर, मछली, कुमुद, कमलिनी–ये यब इसी एकाङ्गी प्रेमकी कक्षामें आते हैं। यह पूर्ण प्रेमका प्रकाश नहीं है। सारस, चक्रवाक और प्रेमके अधूरे उदाहरण हैं। सारसमें वियोग नहीं है। चक्रवाकमें संयोग नहीं है। अभिसारमें भी दूरी और देरी है। छद्ममें भी दूरी और देरी है। देशकालकी उपाधिसे युक्त यह प्रेमपूर्ण नहीं हो सकता। पूर्णताकी प्राप्तिका साधन हो सकता है। अभिसार छद्म–दोनोंमें ही प्रत्यक्ष विरहकी स्थिति है। मिलनकी अवस्थामें भी अनमिलेपनकी प्रतीतति चित्तकी विपरीतता है। वह भी प्रेमका लक्षण होनेपर भी प्रेमका स्वरूप नहीं है। जो संयोगमें बढ़े और वियोगमें घटे अथवा संयोगमें घटे और वियोगमें बढ़े, वह तो प्रेम ही नहीं है। प्रेमपर दूरी और देरीकी उपाधिका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

भ्रान्ति चाहे अविद्याजन्य हो अथवा प्रेमजन्य, दुःखका ही कारण बनती है। उसमें परमाह्लादस्वरूप प्रेमकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं है। मानसमें भी न्यूनाधिक्यका भाव रहता है। भले ही क्षणिक हो; परन्तु, प्रियतममें दोषका अध्यारोप भी तत्काल दुःखका ही कारण होता है। अतएव प्रेमका उत्कृष्ट रूप युगलका सामरस्य ही है। सम्पूर्ण प्रेमकी अभिव्यक्ति केवल राधा–कृष्णके प्रेममें ही है। प्रेमके तरङ्गायित रूपमें कृष्ण राधा एवं राधा कृष्ण होते रहते हैं। यह कोई निर्गुण–निष्क्रिय ब्रह्मका स्वरूप नहीं है। यह सगुण–सक्रिय दिव्य स्पन्दनात्मक ब्रह्म है। प्रेममें किसी प्रकारके भेदकी उपस्थिति नहीं रहती है। उसकी अनिर्वचनीयता भी स्वयंप्रकाश एवम् अनुभवगम्य है। इसीसे इसको **'प्रेमाद्वैत'** अथवा **'रसाद्वैत'** कहते हैं। यह ब्रह्मशक्तिका परिणाम अथवा विक्षेप नहीं है। प्रेम स्वयं सविशेष ब्रह्म ही है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

वास्तविक भजन

तुम शरीरसे एक न होकर विराट्से एक हो जाओ। यह शरीर तुम्हारा शरीर नहीं है; आकाश तुम्हारा शरीर है। आकाश तुम्हारा शरीर नहीं है। चित्ताकाश तुम्हारा शरीर है। चित्ताकाश तुम्हारा शरीर नहीं है; चिदाकाश तुम्हारा शरीर है। शरीरी-अशरीरी भाव नहीं है; तुम अद्वय हो। जैसे रस्सीमें सर्प दीखता है, वैसे सर्वभूताधिष्ठाता परमात्मामें समस्त संसार दीख रहा है। वस्तुतः आत्मा ही परमात्मा है। तुम स्वयं साक्षात् परमात्मा हो। अपने आपको अद्वितीय परब्रह्म परमात्मा जानो। 'मैं ही सर्वाधिष्ठान-सर्वावभासक-स्वयंप्रकाश परमात्मा हूँ'-इस एकत्वमें-अद्वैतमें स्थित हो जाओ।

एक संख्या होती है। एकका आधा होता है। एक+एक=दो होता है। संख्या गुण है; तत्त्व नहीं है। अद्वैत संख्या या गुण नहीं है। अद्वैतका आधा नहीं होता है। अद्वैद+अद्वैत=दो अद्वैत नहीं होता है। अद्वैत तत्त्व है। इसमें आस्था होने दो। अद्वैत तत्त्वमें आस्था होना माने त्याग-वैराग्य-उपासना-योग या समाधि नहीं है। यह ज्ञान है। इसका अर्थ है कि जन्म-मरण, नरक-स्वर्ग प्रतीतियोंमें इस उदासीन अद्वय तत्त्वको

अपने आपके रूपमें जानो। जन्म-मरण, नरक-स्वर्ग इत्यादि प्रतीति मात्र है। अपने आपको असंग-अद्वय-आत्मतत्त्वके रूपमें जानो। जिसने सबमें आत्माको और आत्मामें सबको जान लिया है, उसके लिए अद्वैतानुभूति ही उसका वास्तविक भजन है।

तुम अंगूर खाओ और उसमें मिठास न हो, तो क्या तुम वह अंगूर खाओगे? तुम मिर्च खाओ और उसमें तीखापन न हो, तो क्या तुम वह मिर्च खाओगे? वस्तुओंका स्वाद ही उनका रस है। उपाधिके कराण रसमें जो भेद होता है, उसके कारण कोई वस्तु राग या द्वेष करने योग्य नहीं है। मनुष्यको कभी हर्रे या त्रिकटु भी खाना पड़ता है। उस कटु वस्तुके स्वाद, गुण, नाम रूपमें क्या परमात्मा नहीं है? संसारकी सभी वस्तुओंमें-चाहे उनका कोई नाम-रूप हो और चाहे उनमें कोई भी गुण प्रतीत हो-जो सत्ता है, प्रकाश है,रस है, वह परमात्मा ही है। अतः भेदको मत देखो। एकताको देखो। अद्वयताको देखो।

तुम भेद देखते हो, अभेद नहीं देखते हो। नाम-रूप-गुणके कारण भेद है। सत्ता-चित्ता-आनन्दमें भेद नहीं है। जो सबमें एक है, वह दृष्टिमें नहीं आता है। तुम इन्द्रियोंके कारण भेद-ही-भेद देखने लगते हो। अतः तुम संसारमें पड़े हो। जो पार्थक्य है, उसे मत देखो। एकत्व देखो। जब तुम एकत्वको देखोगे, तब तुम्हारे ज्ञानका आकार विशाल हो जायेगा। प्राकृत ज्ञानके कारण तुम्हारे ज्ञानका आकार विशाल हो जायेगा। प्राकृत ज्ञानके कारण तुम्हारे ज्ञानमें जो अल्पता है, वह मिट जायेगा। जब वृत्ति घटाकार होती है, तब घड़े जितनी लगती है। जब वृत्ति अखिल जगत्के अभिन्न निमित्तोपादान-कारण परमात्माका आकार ग्रहण करेगी, तब तुम्हारा ज्ञान नारायणाकार हो जायेगा। तुम श्रीनारायणसे एक होकर बैठ जाओ।

जो दीख रहा है, सो भगवान् है। जो मनमें उठ रहा है, सो भगवान् है। '**अहम् इदं सर्वं च ब्रह्मैव।**' जो सृष्टि दिखलायी पड़ रही है, इसमें परमात्माके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जितनी वस्तु या भाव हैं, सब परमात्मामें हैं; परमात्माके लिए हैं; परमात्माके रूप हैं। अतः

एकता सच्ची है। अनेकता केवल झूठी प्रतीति है। जब एकत्व ही सत्य है, तब अपने बड़प्पनका अहंकार कहाँ? जब सब एक ही हैं, तब राग-द्वेष-भय किससे? तब मित्र-शत्रु कैसे?

मतवादिन सों अरज यही
अपने-अपने इष्टदेव को व्यापक मानत हौ कि नहीं?
यदि तुम व्यापक नाहिन मानत, जीव दसा तहँ आइ रही।।

(श्रीकाष्ठजिह्वा स्वामी)

वास्तविक भजन एकत्व-अद्वैतानुभूति ही है। अद्वैत-तत्त्वनिष्ठके भजनमें न अविद्या है, न अस्मिता है, न राग है, न द्वेष है, न भय है। वास्तविक भजनका अर्थ है-एक अद्वय परमात्मा है। सबमें, सब दशामें, सब रूपमें उसी परमात्माको देखना। मैं-तुम, यह-वह सब वाग्व्यवहार-मात्र है। एक अद्वितीय परमात्मामें आस्था ही भजनका वास्तविक स्वरूप है। इस अद्वैतनिष्ठामें दृढ़ हो जाओ। अद्वितीय परब्रह्म परमात्मा सम एवं निर्दोष है। अतः जिनका मन समत्वमें स्थित हो गया है, वे ब्रह्ममें स्थित हैं। उन्होंने इस जीवनमें ही संसारके आवागमन-चक्रको जीत लिया है।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

व्यवहारमें अलगाव

तत्त्वज्ञानियोंमें कोई वसिष्ठजीके समान ज्ञानोपदेश करता है। कोई शुकदेवजीके समान समाधिमें रहता है। कोई दत्तात्रेयकी भाँति अवधूत रहता है। कोई श्रीरामकी भाँति मर्यादा पालन करता है, कोई श्रीकृष्णकी भाँति स्वतन्त्र रहता है।

कोई पूछे–'भाँगके नशेमें क्या होता है?' अरे! भाँग पीकर एक सो जाता है। एक भोजन करने बैठता है और ढेर-सा भोजन करता जाता है। एक गाना प्रारम्भ कर देता है। एक ध्यान करने बैठता है। एक हँसने लगता है और हँसते-हँसते लोट-पोट होने लगता है। अब बताओ! भाँग तो एक ही है; लेकिन भाँगके नशेका हरेकपर भिन्न-भिन्न प्रभाव है। ऐसा क्यों? इसलिए कि हर एककी अपनी-अपनी प्रकृति होती है। उसके अनुसार वह व्यवहार करता है।

ज्ञानी भी अपनी प्रकृतिके अनुसार व्यवहार करता है। ज्ञानीकी रहनी मत देखो। रहनी एक प्रकारकी नहीं होती है। ज्ञान होनेपर वह चाहे तो याज्ञवल्क्यकी भाँति संन्यास लेकर रहे अथवा वसिष्ठकी भाँति गृहस्थ रहकर पौरोहित्य करे अथवा दत्तात्रेयके समान अवधूत रहे या श्रीकृष्णकी भाँति भोगोंमें रहे।

कृष्णो भोगी शुकस्त्यागी नृपौ जनकराघवौ।
कर्मनिष्ठा वसिष्ठाद्याः सर्वे ते ज्ञानिनः समाः।।

श्रीकृष्ण भोगी हैं। शुकदेव त्यागी हैं। जनक और श्रीराम राजा हैं। वसिष्ठादि कर्मनिष्ठ हैं। किन्तु, ये सब समान ज्ञानी हैं। ज्ञानकी दृष्टिसे सब-के-सब सम हैं और व्यवहारकी दृष्टिसे सब-के-सब अलग हैं। सबकी अपनी-अपनी प्रकृति होती है और तदनुरूप सबका अपना-अपना व्यवहार होता है। तत्त्व एक-अद्वितीय है; लेकिन, व्यवहारमें अलगाव होता है।

योगिनो भोगिनो रागिणश्चेतरे दृश्यते ज्ञानिनां नैकरूपा गतिः।

कोई योगी है। कोई भोगी है। कोई रागी है। ज्ञानियोंका व्यवहार एक प्रकारका नहीं देखा जाता है।

क्वचिच्छिष्टः क्वचिद्भ्रष्टः क्वचिद् भूतपिशाचवत्।
नानारूपधरो योगी विचचार महीतले।।

'श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज' यह श्लोक बोलते थे। तत्त्वज्ञानी कहीं शिष्ट वेशमें रहते हैं। कहीं भ्रष्ट वेशमें रहते हैं। कहीं भूत-पिशाचके समान पागल रूपमें रहते हैं। योगी-ज्ञानी नाना रूप धारण करके पृथिवीपर विचरण करते हैं।

तदधिगमे उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ।
तद्व्यपदेशात् –ब्रह्मसूत्र

'श्रीमध्वाचार्यजी' कहते हैं कि जो पुरुष एकत्वमें स्थिर होकर भजन करता है, वह भजन करता हुआ पुरुष कभी भी चाहे जैसा आचरण नहीं करता है। यदि कदाचित् वह चाहे जैसा आचरण करे तो भी वह परमात्मामें ही व्यवहार करता है।

'श्रीशंकराचार्यजी' कहते हैं कि किसी भी कर्मसे तत्त्वज्ञानीका मोक्ष प्रतिबन्ध नहीं होता है।

न केनचित् कर्मणास्य मोक्षः प्रतिबध्यते।

परमात्मतत्त्वका अधिगम हो जानेपर आगे होनेवाले पापोंका संस्पर्श नहीं होता है। पहले किये गये पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसा श्रुतिने कहा है।

जैसे ईश्वर सृष्टि करते हुए भी स्रष्टा नहीं होता है; पालन करते हुए भी पालक नहीं होता है; संहार करते हुए भी संहारक नहीं होता है; अपने स्वरूपमें ही स्थित रहता है; वैसे ही, तत्त्वज्ञानी भी सब प्रकारका व्यवहार करते हुए भी अपने स्वरूपमें ही स्थित रहता है। भले ही वह आश्रम बना ले और शिष्योंका पालन करे अथवा सब उजाड़ दे, तब भी वह कुछ नहीं करता है। उसका जो व्यवहार है, वह सब परमात्मामें है। सब-का-सब व्यवहार करते हुए भी वह परमात्मामें ही है। तत्त्वज्ञानकी असंग-अद्वय-परब्रह्म परमात्मस्वरूपमें अच्युत स्थितिको देखो और स्वयंको लाभान्वित करो।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

हम और तुम तो बिल्कुल एक ही हैं!

एक बड़े अच्छे महात्मा थे। त्यागी महापुरुष थे। वह नदी किनारे विचरण करते हुए कहीं गाँवमें आये। प्रजामें उनके प्रति बड़ी श्रद्धा हुई। लोग कहने लगे–'बड़ा त्यागी महात्मा है। बड़ा फक्कड़ है। बड़ा मस्ताना है। जब देखो, तब वह तत्त्वमें स्थित रहता है।' अब तो राजा तक तारीफ पहुँची। राजा उनके पास गया। राजाकी भी श्रद्धा हो गयी। उसने महात्मासे मन्त्र ले लिया। राजा उनका शिष्य बन गया।

राजाने कहा–'महाराज! अब आप यहीं रहिये।' उनको रहनेके लिए अपना बँगला दे दिया। राजा-रईसोंके आरामकी जो सामग्री होती है, वह सब धीरे-धीरे वहाँ गयी। 'एयर कण्डीशन' (Air-Condition) लग गया। शानदार बिजली लग गयी। सब सुख-सुविधाका सामान वहाँ आ गया। अब तो महात्मा-जी उसीमें रहने लगे। पाँच-छह महीनोंके बाद राजा वहाँ आया। उसने कहा–'महाराज! हममें और तुममें फर्क क्या है? हम और तुम तो बिलकुल एक ही हैं।' महात्माने कहा–'हाँ! ठीक है। राजन्! तत्त्व-दृष्टिसे हम और तुम तो बिल्कुल एक ही हैं। तुम्हारी तत्त्वदृष्टि जाग गयी है। हमारी तत्त्वदृष्टि तो छूट गयी है।'

उसके बाद महात्मा वहाँसे उठे और बोले–'राजा! चलो! नदी के

किनारे घूम आवें।' राजा ने कहा–'हाँ! महाराज! चलो।' जब घूमनेके लिए चले, तब राजा साहब एक-मीलतक गये, दो मीलतक गये, तीन-मीलतक गये। कहीं रुकनेका नाम ही नहीं था। वह महात्मा तो निर्बाध गतिसे आगे बढ़ते ही जा रहे थे। राजाने कहा–'देखो! महाराज! बहुत दूर आ गये हैं। अब लौट चलिये!' महात्मा बोले–'देखो राजन्! हमारा मन तो आज हिमालयकी यात्रा करनेका है। हमारे साथ तुम भी चलो।' राजा बोला–'महाराज! हम आपके साथ कैसे जायेंगे? हमको तो इजाजत लेनी पड़ेगी। हमको तो पत्नीसे बात करनी पड़ेगी। बेटेसे बात करनी पड़ेगी। परिवारको देखना पड़ेगा। सरकारको सँभालना पड़ेगा। हम आपके साथ कैसे जा सकते हैं?' महात्मा बोले–'नहीं राजा साहब! चलो ना! हममें और तुममें क्या फर्क है? हममें और तुममें कोई अन्तर थोड़े ही है? हम और तुम तो बिल्कुल एक ही है। जैसे हम चल रहे हैं, वैसे ही तुम भी चलो ना!' राजा साहब बोले–'नहीं महाराज! हमारे लिए तो यह अशक्य है। असम्भव है। महाराज! हमारे राज्यमें तो ब्रिटिश सरकारका प्रतिनिधि रहता है। उसकी इजाजतके बिना हम अपने राज्यकी सीमासे बाहर ही नहीं जा सकते हैं।' महात्मा बोले–'राजा साहब! आप अब यहीं रहिये। **खुश रहो, अहले वतन! हम तो सफर करते हैं।** हम तो अब हिमालयकी यात्रा करने जा रहे हैं। हम और तुम दोनों एक ही हैं; लेकिन, तुम इस घेरेके भीतर रहो और हम इस घेरेके बाहर जा रहे हैं। तत्त्वतः हम और तुम बिल्कुल एक ही हैं। व्यवहारतः हममें और तुममें बहुत फर्क है।

नारायण! यह जो 'एक ही है' वाली बात है ना, वह बिल्कुल डींग हाँकना है। धनमें एक नहीं है। भोगमें एक नहीं है। धर्ममें एक नहीं है। रहने-सहनेमें एक नहीं है। एकताकी बात तो बिल्कुल जबाँ-दराँजी है–जबानी जमा-खर्च है। सीताराम! महात्माओंकी लीला बड़ी न्यारी है। उनके अन्तरतम-हृदयकी स्थिति तो उन जैसे लोग ही जान सकते हैं। महात्माकी पहचान तो महात्मा ही कर सकता है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

संन्यासीका लक्षण

काशीमें एक महान् विद्वान् संन्यासी थे–'स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती।' उनका मठ दशाश्वमेध घाटपर है। एर राजा उनका दर्शन करने आया। उसने देखा कि यह स्वामीजी राजाकी भाँति वैभवमें रहते हैं। राजाने पूछा–'स्वामीजी! संन्यासीका लक्षण क्या है?' स्वामीजीने सेवकको बुलवाया और राजाको मठसे बाहर निकलवाकर द्वार बन्द करवा दिया। राजा श्रद्धालु था। अतः सर्दीके दिन होनेपर भी वह पूरी रात हाथ जोड़े शीतसे काँपता द्वारके बाहर फाटकपर खड़ा रहा। सबेरे फाटक खुला। राजाकी श्रद्धा-भावनाको देखकर स्वामीजीने राजाको भीतर बुलवाया और बोले–'इसका नाम संन्यासी है, जो तुम्हारे जैसे राजाको भी कुछ गिनता नहीं।'

नारायण! जिस समय मनुष्य अपनेको सम्पूर्ण परिच्छिन्नताओंसे मुक्त जान लेता है, उस समय परिच्छेदोंके नियन्ता और परिच्छेदा-भावकी उपाधिसे विद्यमान चैतन्य ईश्वर स्वयं उस अपरिच्छिन्नकी सेवामें लग जाता है।

कबीरा मन निर्मल भयो जैसे गंगा नीर।
पाछे-पाछे हरि फिरैं, कहत कबीर-कबीर।

ब्रह्मज्ञानी आप महेश्वर, ब्रह्मज्ञानीको ढूँढै परमेश्वर।।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

गुरु कैसा हो?

श्रीमद्‌भागवतमें जहाँ गुरुका वर्णन है, वहाँ लिखा है कि गुरुको श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ-उपशमायन होना चाहिए। वेदवचनमें जो बात छिपी हुई है, उसको भागवतने प्रकट कर दिया। भागवत तो वेदोंकी व्याख्या है! वेदातिरिक्त बात भागवतमें नहीं कही है। वेदोंकी व्याख्याके रूपमें भागवतने बोल दिया कि गुरुको श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठके अतिरिक्त शान्त भी होना चाहिए।

अच्छा, देखो! गीतामें है-'**उदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्व-दर्शिनः।**' तत्त्वदर्शी ज्ञानी तुम्हें ज्ञानका उपदेश करेंगे। केवल वाचिक ज्ञानी नहीं अपितु अनुभवी ज्ञानी तुम्हें ज्ञानका उपदेश करेंगे। उपनिषद्‌में है-'**श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं।**' '**तद्विज्ञानार्थम् स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः।**' हाँ! समाधि लेकर जाये। यदि गुरुजी अग्निहोत्री हों, तो उनके लिए लकड़ी लेकर जायें और वे अग्निहोत्र करेंगे। यदि गुरुजी संन्यासी हों, तो लकड़ी लेकर नहीं जाना चाहिए। संन्यासी गुरुजी अन्तर्हवन करते हैं-'**प्राणाय स्वाहा। अपानाय स्वाहा। उदानाय स्वाहा। व्यानाय स्वाहा। समानाय स्वाहा।**' उनके लिए भोजन-सामग्री भिक्षा लेकर जाना चाहिए। '**समित्पाणि**' का अर्थ है-अपने

सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्चको ही ज्ञानाग्निमें दाह करनेके लिए लेकर जाना चाहिए। '**ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।**'

नारायण! गुरु हो-'**श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं उपशमायनं।**' यदि गुरु श्रोत्रिय होगा और ब्रह्मनिष्ठ नहीं होगा, तो अनुभव नहीं करा सकेगा। यदि गुरु श्रोत्रिय नहीं होगा और ब्रह्मनिष्ठ होगा, तो बोलकर समझा नहीं सकेगा। इसलिए, श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ-दोनों गुण चाहिए। '**उपशमायनं**'का अर्थ यह है कि शम-दम-तितिक्षा-श्रद्धा-समाधान-उपरति आदि जो सद्‌गुण हैं, वे अपना घर बनाकर गुरुमें रहते हों। '**उपशमानां तदुपलक्षितानां दमादिनां च अयनं अधिष्ठानं।**' समस्त सद्‌गुण अपने आप ही उसकी सेवा कर रहे हों। तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिए शान्त होना चाहिए।

यह जो उपनिषद् वाला है-**श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं,** उसमें **उपशमायनं** इत्यादि गुण छिपे हुए हैं। कहीं किसीको श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहनेसे शान्त-दान्तादि गुणोंका बोध न हो, अतएव व्याख्याके रूपमें, भाष्यके रूपमें भागवत्‌में **श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं**के साथ-साथ **उप-शमायनं** शब्दका प्रयोग है। भागवतने यह बात बोल दी कि गुरुको उपशमायन-शान्त भी होना चाहिए। भागवत वेदोंकी व्याख्या है। वेदसे अधिक बात भागवतमें नहीं कही गयी है। वेदवचनमें छिपी बातको भागवतमें प्रकट करके कह दिया। यह भागवतकी विशेषता है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

सद्गुरुकी प्राप्ति कैसे हो?

नारायण! जिस समय आपको सद्गुरुकी सच्ची आवश्यकता होगी, उसी समय आपको सद्गुरु मिल जायेगा। जबतक सद्गुरुकी आवश्यकता नहीं है, तबतक मिलनेमें विलम्ब है। गुरु अपने आत्माका ही एक रूप है। जैसे ईश्वर अपने आत्माका ही मायाविशिष्ट या मायोपाधिक या अन्तर्यामी रूप है, वैसे गुरु भी शिष्यका ही अन्तर्तम रूप है। जब आप गुरुकी ओर जानेके लिए अग्रसर होंगे, तब आपके आत्मदेव ही गुरु बन करके आपके सामने प्रकट हो जायेंगे।

एक बात और है। जरा उपासकोंकी है। क्या आपने अनादिकालसे अबतक किसी जन्ममें कोई गुरु नहीं बनाया है? गुरु तो है। गुरु कोई नाशवान वस्तु नहीं है। आपके अन्तःकरणके अन्तर्तम प्रदेशके सूक्ष्मतम अन्तर्देशमें सद्गुरु संस्कारके रूपमें बैठा हुआ है। आप उससे विमुख हो गये हैं। आप उसको छोड़कर दुनियामें घूमनेके लिए चल पड़े हैं। जब आप उसकी प्राप्तिके लिए व्याकुल होंगे, तब आपके अन्तःकरणके अन्तस्तलमें विराजमान वही ईश्वरूप सद्गुरु प्रकट हो जायेगा। जबतक आप उसकी ओर पीठ रखते हैं–उसकी उपेक्षा करते हैं, तबतक गुरु प्रकट नहीं होता है। जब आप गुरु पानेके

लिए उन्मुख होंगे, तब आपके अन्तःकरणके अन्तर्तम प्रदेशके सूक्ष्मतम अन्तर्देशमें विराजमान सद्गुरु स्वयमेव प्रकट होंगे।

हमारे 'श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज' कहते थे-'देखो! मैं तो शिष्यके हृदयमें बैठा हुआ हूँ। जबतक उसकी मुक्ति नहीं होगी, तबतक मैं भी मुक्त नहीं होऊँगा। मैं भी शिष्यके हृदयमें बैठा हुआ बद्ध ही रहूँगा। मैं स्वरूप रूपसे मुक्त हूँ; परन्तु, शिष्यके हृदयके द्वारा पकड़ा हुआ जो मेरा रूप है, वह पराधीन है। शिष्यको मुक्त करके शिष्यका ही अन्तर्तम रूप गुरु मुक्त होगा।।' हाँ! जैसे अन्तर्यामी परमेश्वर अपने हृदयमें रहता है।

आचार्यादेव विदिता विद्या साधिष्ठं प्राप्त।
न नरेण अवरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो यणु एष धर्मः।

जबतक कोई सद्गुरु इसका उपदेश नहीं करेगा, तबतक आप भले ही अपने मनसे तीर मारते रहो; लेकिन, एक तीर भी तत्त्वपर नहीं लगेगा। इसलिए, सद्गुरुकी प्राप्तिके लिए रोज प्रार्थना करो कि 'हे प्रभु! हमें सद्गुरुके रूपमें मिलो। अपने दिलमें सद्गुरुके मिलनेके लिए उत्कण्ठा-व्याकुलता-लालसा हो।

देखो! दो टूक बात सुनो। यदि अपने मनमें छटपटी हो कि हमें सद्गुरु मिलें, तो गुरु अवश्यमेव मिलेंगे। अब कहो कि ऐसी छटपटी कहाँसे आवे, तो सुनो उपाय। जो लोग सचमुच अपने गुरुके प्रति श्रद्धालु हैं, उनका संग करो। हाँ! यही उपाय है। जो लोग गुरु माननेवाले हैं और गुरुके प्रति श्रद्धा-भक्ति-भाव सम्पन्न हैं, उन श्रद्धालुओंका संग कीजिये। संगका रंग बड़ा प्रबल होता है। श्रद्धासे श्रद्धाका आविर्भाव होता है। गुरु-भक्तोंके संगके परिणाम-स्वरूप आपकी भी गुरुके प्रति श्रद्धा हो जायेगी। श्रद्धासे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। श्रद्धावान्को ही सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्ममूर्ति सद्गुरुदेव प्राप्त होते हैं।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

गुरुसे बढ़कर कौन?

क्या गुरुसे बढ़कर भी कोई है?

अरे! बस! तुम्हीं हो। देखो! तुम गुरुको खिलाते हो। तुम गुरुको कपड़ा भी पहनाते हो। तुम गुरुको चलते समय रास्ता बतलाते हो। पाँव यहाँपर रखिये और यहाँपर मत रखिये–ऐसी आज्ञा देते हो। सब तो सिखलाते–समझाते हो। गुरुको तो अपना आज्ञाकारी बनाकर रखा है। गुरु क्या है? तुम्हारा खिलौना है। और क्या है?

अच्छा! देखो! 'योगवासिष्ठ'में एक श्लोक है–

ईश्वरास्तित्वनिर्णेता त्वं तत्तोऽसि महेश्वरः।
गुरुर्योग्यत्वनिर्णेता त्वं तत्तोऽसि गुरुर्गुरुः।

ईश्वरके मुकदमेका फैसला करनेवाला कौन है? वह कौन–सा जज है, जो यह निर्णय देता है कि ईश्वर है अथवा नहीं है? नारायण! वह तुम्हीं हो। ईश्वरके अस्तित्वका अथवा नास्तित्वका निर्णय करनेवाला जज स्वंय तुम्हीं हो। आपके हृदयकी अदालतमें वह जज यह फैसला करनेके लिए बैठा हुआ है कि ईश्वर है या ईश्वर नहीं है। हमें अनुसंधानमें कहीं कोई अटक नहीं है। हाँ! तुम स्वयं ईश्वरके भी ईश्वर हो–महेश्वर हो; क्योंकि; तुम्हीं ईश्वरके अस्तित्वके निर्णेता हो। इसी प्रकार तुम्हीं गुरुकी योग्यताके निर्णायक हो। अतः तुम गुरुके भी गुरु हो। गुरुसे बढ़कर केवत तुम–ही–तुम हो।

असलमें, जबतक गुरु तुमको अपना गुरु नहीं बना लेता है, तबतक समझो कि तुमको असली गुरु मिला ही नहीं है। चेला बनानेवाले गुरु बहुत मिलते हैं; लेकिन, गुरु बनानेवाले गुरु बहुत कम मिलते हैं भला! इसीसे, जहाँ विधिपूर्वक संन्यास-दीक्षा होती है, वहाँ शिखा-सूत्रके परित्यागके अनन्तर आचार्यत्वका दान करते समय गुरुजी अपने शिष्यके सिरपर चन्दन-फूल चढ़ाते हैं और कहते हैं-'**त्वमेव साक्षात् ब्रह्मासि।**' तुम ही साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हो।'

गुरु तुमको चेला बनानेके लिए नहीं है। गुरु तुमको अपने अद्वितीय ब्रह्मस्वरूपका बोध करानेके लिए ही है। तुम्हारे ब्रह्मपनेपर जो अज्ञानावरण है, उसको भंग करनेके लिए ही गुरु है। तुम्हारे परिपूर्ण अविनाशी व्यापक अखण्ड अनन्त ब्रह्मस्वरूपपर जो अविद्याका पर्दा पड़ गया है, उस अविद्या और तदजन्य भ्रान्ति निवृत्ति हेतु ही गुरु है।

नारायण! अपने आपको जानो और फिर देखो कि बस! तुम-ही-तुम हो। तुममें सब है। सबमें तुम हो। तुम्हारे सिवाय अन्य कुछ नहीं है। केवल तुम्हीं हो। एक अद्वितीय अखण्ड अपरिच्छिन्न सत्ता-ज्ञान-आनन्द!

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

'तू-ही-तू'

महामुनि श्री अष्टावक्रजीका दर्शन-सत्संग करके राजर्षि जनक राजधानीके लिए प्रस्थान कर रहे थे। वे घोड़ेकी बायीं ओर लटकते रिकाबमें अपना बायाँ पाँव डाल चुके थे। पीठपर बैठनेके लिए अभी उन्होंने अपना दाहिना पाँव उठाया नहीं था। इतनेमें श्रीअष्टावक्रजीकी धीर-गम्भीर-प्रसन्न वाणी प्रतिध्वनित हो उठी-

'अरे राजा! तू नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-अद्वितीय-चिद्-ब्रह्म है। तू देहको अपना आत्मा मानकर झूठ-मूठ भवाटवीमें भटक रहा है। यह तो अज्ञानका जंगल है। तुझसे अन्य अमंगल है। लगा दे अज्ञानके जंगलमें आग। न राग, न भाग, न संग्रह, न त्याग। बस! तू-ही-तू है।'

राजा ज्यों-का-त्यों अवाक् देखता ही रह गया। यह क्या? मैं ही अद्वितीय ब्रह्म हूँ। धन्य है! धन्य है! राजा कृतकृत्य हो गया। कुछ जानना-करना-पाना-छोड़ना शेष नहीं रहा। निर्भय-निर्द्वन्द्व! एक क्षणमें कल्पित अनादि आवरण भंग हो गया। नित्य-सिद्ध असंगता प्रकट हो गयी। जब दूसरा है ही नहीं, तब आसक्ति एवम् विरक्ति भी किससे?

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

ब्रह्मकी झूठी कल्पना

एक बार मैं एक महात्माके पास गया। वे बोले–'हम पहले ब्रह्म थे; अब नहीं हैं'–यह कल्पना छोड़ो। अभी ब्रह्म नहीं है; आगे हो जायेंगे–यह कल्पना भी छोड़ो। जैसे मानसिक पूजा की जाती है, वैसे एक बार झूठमूठकी ही कल्पना करो कि 'मैं ब्रह्म हूँ।' केवल मन-ही-मन कल्पना करो कि 'मैं ऐसा अद्वयतत्त्व हूँ, जिसमें देश-काल-वस्तुका अस्तित्व नहीं है।' अब तुम देखो कि तुम्हारी अखण्डतामें प्रपंच, माया, अविद्या, जीव कहाँ है? अविद्याकी कल्पना सर्वथा झूठी है। अतः ब्रह्मकी झूठी कल्पना भी अविद्यासे मुक्त करनेवाली है।

यादृशी शीतला देवी तादृशो वाहनो खरः।

तुमने अपेको जीव भी तो सुनकर ही माना है।

कुछ अपना जीवत्व देखकर तो माना नहीं है।

मानि मानि बन्धनमें आयो।

अब यदि तुम अद्वय ब्रह्मतत्त्वकी झूठमूठकी भी कल्पना करते हो, तो हमारे पाप-पुण्य, सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक, आना-जाना, जन्म-मृत्यु आदि सब-के-सब कट जायेंगे। जिसकी झूठी कल्पनामें भी इतनी शक्ति है, उस ब्रह्मका यदि तुम साक्षात्कार कर सको, तब तो पूछना ही क्या?

मैंने महात्माकी बोलीको हृदयंगम किया और अपने जीवनको लाभान्वित किया। क्या आप भी फायदा उठायेंगे? आप भी महात्माकी बोलीको ध्यानमें लें और स्वयंमें कृतकृत्यताका अनुभव करें।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म

ब्रह्म सत्य है। ज्ञान है। अनन्त है। परमात्मा सत्य है। ज्ञानस्वरूप है। अपरिच्छिन्न अखण्ड है। सत्य क्या है? लोक-व्यवहारमें ऐन्द्रियक सत्यको सत्य कहते हैं। शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध शरीरादिको सत्य कहते हैं। जिसको इन्द्रियोंसे देखते हैं और काममें लेते हैं, उसको सत्य कहते हैं। सत्यकी परिभाषा करते हुए हमारे अनेकानेक आचार्योंके अपने-अपने दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं। किसीने कहा कि अन्तमें, परमाणुके रूपमें, जो एक छोटा-से-छोटा कण रह जाता है, वह सत्य है। किसीने कहा कि यह बात ठीक नहीं है। सत्य बाहर नहीं होता है। जिस चित्तसे यह सारी सृष्टि मालूम पड़ती है, वह चित्त सत्य है। किसीने कहा कि बीज सत्य है। किसीने कहा कि वृक्ष सत्य है। किसीने कहा कि बदलता हुआ सत्य है। किसीने कहा कि देखता हुआ सत्य है। जैनोंमें ऐसा मानते हैं कि फैलता-सिकुड़ता हुआ सत्य है। हाथीमें जाने पर हाथी हो गया और चींटीमें जानेपर चींटी हो गया। जो एक दिन हाथी हो गया, वही एक दिन चींटी हो गया। कभी फैल गया, तो कभी सिकुड़ गया। बौद्धोंने कहा कि परमार्थ तो शून्य ही है। वेदान्तियोंने कहा कि त्रिकालाबाधित वस्तु ही सत्य है। त्रिकालमें जिसका बाध न हो, वह आत्मा ही सत्य है।

आप सत्यको कहाँ ढूँढ़ते हैं? कण-कणमें? वहाँ ढूँढ़नेसे नहीं

मिलेगा। क्षण-क्षणमें? वहाँ ढूँढ़नेसे भी सत्य नहीं मिलेगा। कोण-कोणमें? वहाँ भी सत्य नहीं मिलेगा। जो कण-कणको, क्षण-क्षणको, कोण-कोणको प्रकाशित करनेवाला इसका अधिष्ठान है, वहाँ सत्य मिलेगा। सर्वाधिष्ठान सर्वावभासक स्वयंप्रकाश आत्मा ही है। तुम स्वयं ही हो। तुम ही एकमात्र सत्य हो। अपनेमें, अपनेसे, अपने आपको देखो। तुम त्रिकालाबाधित आत्म सत्य हो।

वेदान्त माने उपनिषद्। उपनिषद् माने अपौरुषेय ज्ञान। यह अपौरुषेय ज्ञानकी माया भी विलक्षण है। ज्ञानका असली रूप वह है, जो बनाया नहीं जाता। जो पैदा नहीं होता और जो मरता नहीं। जो ज्ञान पैदा होता है, घटता-बढ़ता है, बदलता है, मिट जाता है, वह असली ज्ञान नहीं है। वेदान्तियोंने सत्यका लक्षण किया-अबाधित। जिसका जो असली स्वरूप है, उसका वह परित्याग नहीं करता है। यदि ज्ञान अपने स्वरूपका परित्याग करे और ज्ञानमें परिवर्तन हो, प्रवर्तन हो, परिवर्द्धन हो, तो उस ज्ञानसे भी जुदा उसका एक साक्षी होगा। यहाँ तक कि ईश्वरने भी ज्ञानका निर्माण नहीं किया। जब ईश्वरने सारी दुनिया बनायी है, तब ज्ञान भी बनाया ही होगा। अच्छा बताओ! जब ईश्वरने दुनिया बनायी होगी, तब ज्ञानसे बनायी होगी कि अज्ञानसे? नारायण! ज्ञान पहलेसे ही था। ज्ञान उसको कहते हैं, जिसके न होनेका निश्चय कभी किया ही नहीं जा सके। सत्य उसको कहते हैं, जिसके न होनेका निश्चय कभी किया ही न जा सके। देखो! नास्तिक बहुत-से होते हैं और वे कह देते हैं कि ईश्वर नहीं है। हाँ! लेकिन, कोई यह मुँहसे बोलकर बतावे तो सही कि 'मैं नहीं हूँ।' कोई अपने मनमें यह सोचे तो सही कि 'मैं नहीं हूँ।' -यह आप न बोल सकते हैं और न सोच ही सकते हैं; क्योंकि, आप हैं।

तो, भाई मेरे! सत्य क्या है? '**अबाधितत्वं सत्यत्वं**।' जो कभी बाधित न हो, उसको सत्य बोलते हैं। जिसके मिथ्यात्वका निश्चय कोई माईका लाल, कोई विद्वान् कोई ज्ञानी, कोई तत्त्वज्ञ न कर सके, उसको सत्य बोलते हैं। यदि सत्य ज्ञानसे जुदा होगा, तो सत्य जड़ हो जायेगा।

हाँ! यदि ज्ञान हो और सत्य न हो, तो ज्ञान क्षणिक होगा। क्षण-क्षणमें टूटता रहेगा। यदि सत्य ज्ञान नहीं होगा, तो जड़ होगा। यदि ज्ञान सत्य नहीं होगा, तो क्षणिक होगा। सत्य और ज्ञान-ये दोनों लक्षण एक साथ होने चाहिए। उपनिषद्‌में यही बात कही-'**सत्यं ज्ञानं। ज्ञानं सत्यं। अनन्तं** दोनोंका है।

अनन्तं सत्यं। अनन्तं ज्ञानं। सत्यका न आदि है, न अन्त है। आदि-अन्त नहीं है, तो मध्य भी नहीं है। ज्ञानका न आदि है, न अन्त है। अतः मध्य भी नहीं है। आदि-मध्य-अन्तसे वर्जित जो चित्स्वरूप अधिष्ठान है, वह सत्य ज्ञान है। अनन्तका अर्थ है-देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न। वस्तुके बिना देश-कालका बोध नहीं होता है। जब कोई चीज है, तब उसकी लम्बाई-चौड़ाई है। लम्बी-चौड़ी चीजमें देशकी कल्पना हो गयी। जब वस्तुमें परिवर्तन है, तब क्रम हो गया। क्रमसे काल की कल्पना हो गयी।यदि कोई दृश्य-वस्तु न हो, तो देश और काल भी नहीं होंगे। वेदान्तमें देश और कालको द्रव्य नहीं माना जाता है। नैयायिक-वैशेषिक देश-कालको द्रव्य मानते हैं। पदार्थ मानते हैं। द्रव्य-गुण-क्रम सामान्यादि हैं। उसमें पृथिवी-अप-तेज-वायु-आकाश-दिक्-काल-आत्मा और मनांसि। वेदान्तमें देश और कालको द्रव्य नहीं मानते हैं। लम्बाई-चौड़ाईको देश बोलते हैं। एकके बाद एक, एकके बाद एक, एकके बाद एक-इस क्रमको काल बोलते हैं। ह्रस्व-पारिमाण्डल्यकी संविद्‌को देश कहते हैं। क्रम संविद्‌का नाम काल है।

सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म। अब आप एक बातपर ध्यान दें। यदि सत्य अपनेसे अलग होगा, तो बेहोश होगा। यदि अपनी छटपटाहट दूर करनी हो, तो अपना आत्मा ही सत्य और ज्ञान-स्वरूप है। सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनन्तस्वरूप, देश-काल-वस्तु अपरिच्छिन्न आत्मा ब्रह्म है। अबाधित, चिन्मात्र, आदि-मध्य-अन्तसे रहित, आत्मवस्तुको ब्रह्म कहते हैं। आप अपने आत्माको पहचाननेके लिए प्रयत्नशील बनो। अपने ब्रह्मस्वरूपको पहचाननेके लिए जो प्रक्रियाएँ

बतलायी गयी हैं, उनमें-से कुछ इस प्रकार हैं–'**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।**' '**आनन्दादेव इमानि भूतानि जायन्ते।**' '**विज्ञानादेव इमानि भूतानि जायन्ते।**' यह सब रीति अद्वितीय ब्रह्म तत्त्वको समझानेके लिए है।

एक बात है। अपने आप पढ़नेसे श्रुतिका रहस्य खुलता नहीं है। श्रुतिका विज्ञान-अनुभव प्राप्त करनेके लिए सद्गुरुके पास जाना चाहिए। '**तद् विज्ञानार्थमेव गुरुमेवाभिगच्छेत्।**' '**तद्विज्ञानार्थमेव। तस्येव विज्ञानार्थम्। न तु अन्यस्य।**' केवल ब्रह्मको जाननेके लिए जाओ। **गुरुमेव। न तु अन्यम् कश्चन।** केवल गुरुके पास जाओ। दूसरेके पास मत जाओ। **अभिगच्छेदेव। अभिसामुख्येन अभिगच्छेत्।** गुरुके अनुकूल होकर उसके पास जाये। उसकी बातको काटनेवाली बात पहले नहीं सोचनी चाहिए। पहले गुरुकी बातका अनुकूल चिन्तन करना चाहिए। उसको मनन कहते हैं। पहले गुरुके दृष्टिकोणको समझना चाहिए। गुरुने यह बात किस भावसे कही? किस अभिप्रायसे कही? जब गुरुकी आँखसे अपनी आँख मिल जाये, तब तो कहना ही क्या है? जिस दृष्टिसे गुरु ईश्वर-जीव प्रपञ्चको देख रहा है, उस दृष्टिसे अपनी दृष्टि मिला लो। दोनोंकी दृष्टि एक हो जाये। आप देखोगे कि आप ही हो। आपके सिवाय और कोई वस्तु नहीं है। '**अहमेवेदं सर्वम्।**'

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

‘न यह सत्य, न वह सत्य’

राजा जनक अपने महलमें शयन कर रहे थे। उन्हें स्वप्न हुआ। अद्भुत स्वप्न! वे एक दीन-हीन भिक्षुक हैं। उन्हें तीन-दिन तक खाने-पीनेको कुछ नहीं मिला। कहींसे किसी प्रकार चावल-दाल मिले। वे उसे मृत्तिका-पात्रमें पकाने लगे। इसी समय लड़ते हुए दो बैल वहाँ आये। वह खिचड़ी नष्ट-भ्रष्ट हो गई। नींद टूट गयी। स्वप्नके दृश्य अदृश्य हो गये। महल, पलंग, रात्रिका सुख-शयन, सब-का-सब ज्यों-का-त्यों मिला।

राजा जनकके मनमें प्रश्न उठा-‘यह सत्य है कि वह सत्य?’ अर्थात् जो स्वप्न देखा, वह सत्य या जो जाग्रत्में देखा, वह सत्य? राजा जनकने एक सभाका आयोजन किया। राजा जनककी सभामें विद्वान् आने लगे। प्रश्न-समाधान होने लगे। लेकिन, समस्या ज्यों-की-त्यों रही। ‘यह सत्य कि वह सत्य?’

अन्ततोगत्वा महामुनि श्रीअष्टावक्रजी पधारे। उनके टेढ़े-मेढ़े शरीर, विचित्र रंग ढंग लुढ़कते हुए चलना, इत्यादि देखकर सभासद् हँसने लगे। राजा जनकको भी हँसी आ गयी। श्री अष्टावक्रजीने धीर गम्भीर स्वरसे पूछा-‘आप लोग किसको देखकर हँस रहे हैं? शरीरके उपादान अर्थात् पञ्चभूत, परमाणु, प्रकृति, माया या परब्रह्मको देखकर

हँस रहे हो? भाई! उसमें तो कोई भेद नहीं है। सबका मूल-मसाला एक ही है। यदि बनानेवाले परमेश्वर पर हँस रहे हो, तो उसकी हँसी उड़ानेके कोई कारण नहीं है। परमेश्वरकी रचनाको, उसके कला-कौशलको देख-देखकर आनन्द लेनेको है।' सम्पूर्ण सभामें गम्भीरता छा गयी। इस बे-डील-डौलके बालकने कमाल कर दिया। सत्य तो यह है कि ज्ञान किसी आकृतिकी अपेक्षा नहीं रखता। ज्ञान किसी व्यक्ति-विशेषके पराधीन नहीं है। ज्ञान स्वयं प्रकाश ही है।

बात यह थी कि वरुण लोकमें बड़े-बड़े विद्वानोंकी आवश्यकता थी। वरुणने अपना एक विशिष्ट विद्वान् राजा जनककी सभामें भेज दिया था। वह शास्त्रार्थमें जिस किसीको पराजित करता, उसे जलमें डुबो दिया जाता था। वरुणके दूत उसको आदरपूर्वक आयोजित सभामें ले जाते थे। उन्हीं डुबोये हुए विद्वानोंमें अष्टावक्रके पिता 'कहोल ऋषि' भी थे। जब श्रीअष्टावक्रजीको यह ज्ञात हुआ, तब वे राजा जनककी सभामें पधारे। वहाँ यही प्रश्न था-'यह सत्य या वह सत्य?' विद्वद्-वृन्द इस प्रश्नका उत्तर देनेमें असमर्थ थे।

महामुनि श्रीअष्टावक्रजीने घोषणा कर दी-'न यह सत्य, न वह सत्य। स्वप्न और जाग्रत् दोनों ही जिस अधिष्ठानमें अध्यस्त है, जिस स्वयंप्रकाश प्रकाशके द्वारा प्रकाशित हैं, एक मात्र वही सत्य है। सत् अधिष्ठान एवम् चित्-प्रकाश दोनों एक ही हैं और वह अपना आत्मा ही है। यह, वह, मैं, तुम-ये सब व्यर्थ हैं, मिथ्या हैं।'

वरुण लोकका यज्ञ समाप्त हो चुका था। कहोल ऋषि मुक्त कर दिये गये थे। 'महामुनि श्रीअष्टावक्रजीकी जय हो' के नारोंसे सम्पूर्ण सभा-मण्डल गूँज उठा।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

बीरबलकी काक गणना

अकबर बादशाहने बीरबलसे पूछा–'हमारे राज्यमें कितने कौए हैं?' उत्तरमें बीरबलने कहा–'गिनकर हिसाब जोड़नेमें समय भी चाहिए और खर्च भी काफ़ी करना पड़ेगा।'

बादशाहने बीरबलकी माँगके अनुसार कई हजार रुपये दे दिये। समय बीतता गया। बादशाहके पूछने पर बीरबल कहता–'हुजूर! अभी गिनना बाकी है।'

कुछ कालके बाद बीरबलने कहा–'जहाँपनाह! हिसाब तैयार है। आपके राज्यमें इतने करोड़, इतने लाख, इतने हजार, इतने सौ, इतने कौए हैं।'

अकबर–'यदि हिसाबमें कमी–बेशी हुई तो?'

बीरबल बहुत चालाक है। उसने उत्तर दिया–'हुजूर! यदि ज्यादा निकले, तो समझिये कि दूसरे राज्यसे मेहमान आ गये होंगे। यदि हिसाबमें कम निकले, तो जानिये कि आपके राज्यके कुछ कौए दूसरे राज्यमें मेहमान बनकर चले गये।'

इस उत्तरसे बादशाह खुश हुए।

बीरबलकी संख्यागणना जैसे मिथ्या है, यह संसार भी वैसे ही मिथ्या है। शास्त्रोंमें जितने विधि–निषेध हैं, वह बीरबल–कथित मेहमान–कौएके आने–जाने जैसे हैं। वह तो अज्ञानियोंको प्रबोध देनेके लिए हैं। वास्तवमें जगत्का अस्तित्व ही नहीं है। यह तो स्वप्न–विलास है। स्वप्नमें यदि कोई पोथी खोलकर कहे कि 'यह करो, यह मत करो–यह शास्त्रका विधान है,' तो यह जगत भी उसी प्रकार है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

स्वच्छता-पवित्रता

प्रश्न उठता है–शास्त्रोंमें धर्मके बायें हाथसे पुण्य कर्म करनेको मना किया गया है और दाहिने हाथसे करनेके लिए कहा गया है। उसके पीछे क्या राज है? यदि बायें हाथसे किये हुए पुण्यका फल नहीं मिलता है तो क्या बायें हाथसे किये हुए पापका फल मिलेगा?

नारायण! क्या मन है आपका? आप अपनी रुचि तो बतलाइये। यदि आप दाहिने हाथसे कर्म न कर सकते हों तो आप बायें हाथसे कर्म कीजिये। इसमें क्या बात है? लेकिन, पाप तो जिस भी हाथसे किया जाये, वह बुरा ही होता है। यह है कि किसीको भी अपने दाहिने करना अच्छा रहता है। बायें करना अच्छा नहीं रहता है। बायें होता है तो विरोधी हो जाता है।

एक बात और है। पवित्रता और अपवित्रता विवेकमें भी इसका बड़ा भारी सहयोग होता है। जब बायें हाथसे सफाईका काम करते हैं, तब दाहिने हाथसे पूजाका काम करना पसन्द करते हैं। यहाँ दो विभाग हो गये–एक स्वच्छताका और एक पवित्रताका। आप विवेक कीजिये। पहले नलके पानीसे धोती धो लो। वह स्वच्छ हो गयी। उसके बाद गंगाजलसे धो लो, तो वह पवित्र हो गयी। जीवनमें स्वच्छता व पवित्रताका विवेक बना रहे, इसलिए हर जगह कुछ विधि-विधान बैठा लिये जाते हैं। जैसे–बिना विवेकके आदमी कोई काम न करे। बायें-दायेंमें विवेक यही है कि स्वच्छता-पवित्रताके बारेमें विचार करके आपके पास जो पवित्रताके उपकरण हैं, उनको काममें लिया जाये और पवित्र कर्म किये जायें। बायें-दायें जिस भी हाथसे अच्छा काम होगा, उसका फल अच्छा-ही-अच्छा होगा। अच्छे कामका फल हमेशा अच्छा ही होता है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

इष्टदेव-कुलदेव

प्रश्न उठता है–इष्टदेव और कुलदेवमें क्या फर्क है?

नारायण! कुलदेव तो परम्पराके साथ सम्बन्ध रखता है। हमारे माँ–बाप, दादा–दादी, परदादी–परदादा, जिसकी पूजा करते आये हैं, उसको कुलदेव कहते हैं। परम्पराकी दृष्टिसे कुलदेवकी पूजा करना धर्म है। कुलदेवसे डरना भी चाहिए। हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि गलत काम करनेपर हमारे कुलदेव नाराज हो जायेंगे। अतएव अपने कुलदेवको खुश करनेके लिए अच्छा काम करना चाहिए। कोई ऐसा भी तो हो, जिसके डरसे हम अच्छा काम करें।

हमको कभी–कभी ध्यान आता था कि यह काम, जो मैं कर रहा हूँ, जब मेरे गुरुजीको मालूम पड़ेगा, तब वे उसको कैसा समझेंगे? वे इसको पसन्द करेंगे अथवा नहीं? बस! एक कसौटी बन गयी। यदि हमारे गुरुजी हमारे कामको देख–सुनकर, जान–पहचानकर अच्छा समझेंगे, तो यह काम अच्छा है। यदि हमारे गुरुजी हमारे इस कामको बुरा मानेंगे, तो यह बुरा काम है। गुरुजीकी रायसे अपनी राय एक कर दी। गुरुजीकी रुचिसे अपनी रुचि एक कर दी। कितनी सीधी सरल कसौटी है। इसी प्रकार, क्या खायें? देखो! उस वस्तुको भगवान्‌को भोग नहीं लगा सकते हैं कि नहीं? यदि आप उस वस्तुको भगवान्‌को

भोग नहीं लगा सकते हैं तो आप उसको मत खाइये। अपनी जीभको काबूमें रखिये। बता दीजिये कि हमारे आध्यात्मिक डॉक्टरने हमको अमुक वस्तु खानेके लिए मना कर रखा है। आध्यात्मिक भले ही धीरेसे मुँहमें बोल लीजिये और डॉक्टर जोरसे बोल लीजिये। गुरु मत बोलिये, क्योंकि, विदेशी लोग 'गुरु' शब्दका अर्थ नहीं समझते हैं। उनको कहिये कि हमारे मानसिक डॉक्टरने हमको अमुक वस्तु खानेको मना कर रखा है। इस प्रकार, हमारे कर्मकी कसौटी है कि इसको जानकर हमारे गुरुजी खुश होंगे कि नाराज? हमारे भोजनकी कसौटी है कि उसको हम अपने भगवान्‌को भोग लगा सकते हैं कि नहीं? हाँ! यह नहीं कि जो भी मनमें आया, सो ही कर लिया। अरे! गुरुजीको मालूम ही नहीं पड़ेगा। मालूम तो उड़ती हुई हवाको भी पड़ता है। दुनियामें ऐसा कौन-सा काम है, जो किसीको मालूम न पड़े। कुलदेव परम्परासे उपासित देव हैं। उनकी पूजा करनी चाहिए। उनको भोग लगाकर भोजन करना चाहिए।

अच्छा! अब इष्टदेव क्या होगा? इष्टदेव वह होगा, जिसके प्रति हम अपने जीवनको समर्पित करना चाहते हैं। इष्ट माने होता है—यजन। इष्टापूर्ति बोलते हैं! यजन माने जिसको हम अपना सर्वस्व देनेको तैयार हैं। जबतक जीवनमें इष्ट नहीं बनेगा, तबतक व्यक्ति एक उद्देश्यसे काम नहीं करेगा। इष्टदेव गुरुकी आज्ञाके अनुसार होता है। अपने मनके अनुसार नहीं। यदि अपने मनसे इष्टदेव बनाओगे, तो उसको कभी छोड़ भी दोगे। यह छूटना नहीं चाहिए। इसमें दृढ़ता होनी चाहिए। चाहे कुछ भी हो जाये, अपना इष्टदेव न छूटे और उसके प्रति हमारा जीवन-सर्वस्व समर्पित हो। जैसे एक पतिव्रता स्त्री अपने पतिको नहीं छोड़ती है, वैसे एक भक्तको चाहिए कि वह अपने इष्टदेवको न छोड़े। यह नहीं कि जरा जवानी देखी, जरा अच्छी शक्ल-सूरत देखी, हँसना देखा, नाचना देखा और बस महाराज! फिर क्या पूछना? गुरु बदल गये। इष्टदेव भी बदल गये।

सन् 1947 की बात है भला! मैं अमृतसरमें गया था। 1947-

48 में मैंने अमृतसरमें चातुर्मास्य किया था। वहाँकी स्त्रियोंने मुझसे जो पहली बात कही, वह यह थी कि 'स्वामीजी! अभी तक आपकी माला नहीं छूटी।' मैं रुद्राक्षकी माला पहनता था। मैंने कहा–'अरे! तुम लोगोंको हमारी माला ही बुरी लगती है?' वेदान्ती थीं वे! बहुत कट्टर वेदान्ती। उनको हमारा और सबकुछ ठीक लगता था; लेकिन उनको हमारी माला पसन्द नहीं थी। काहेके लिए मैंने यह बात शुरू की? हाँ! तो फिर थोड़े दिनोंके बाद वे फूल-माला-चन्दन-अक्षतादि लेकर आवें कि हमको आप मंत्र दे दीजिये। अब महाराज! एक-एक साथ 20-20, 25-25 स्त्रियाँ भी और पुरुष भी मंत्र लेनेके लिए आने लगे और हाँ! वे सब-की-सब एक ही रंगकी साड़ी पहनकर आवें। लाल अथवा पीली। मैंने लोगोंसे पूछा–'यह क्या माजरा है? उन्होंने बताया–'महाराज! यहाँ पर जो भी महात्मा आते हैं, उनसे मन्त्र लेनेके लिए ये लोग ऐसे ही आते हैं। हर बार आते हैं और हर एकसे यही कहते हैं कि हमें मन्त्र दे दीजिये।' नारायण! आप इष्टदेवकी बात करते हैं। यह कोई क्लब नहीं है। यह कोई सिनेमाघर नहीं है। जैसे पति-पत्नीका विवाह होता है न, ठीक वैसे ही अपनी मनोवृत्तिको एक जगह टिकानेके लिए इष्टदेवके साथ जो विवाह है, उसीका नाम इष्टदेव है! •

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

रुक्मिणी-कृष्ण

रुक्मिणी-कृष्ण कोई नहीं कहता है, सभी कहते हैं-राधाकृष्ण। ऐसा क्यों?

नारायण! ऐसा मालूम पड़ता है कि आप कभी पण्ढरपुर या द्वारिकामें नहीं गये हैं। हमारे श्रीकृष्णके जितने मन्त्र हैं, उनमें **'रुक्मिणीवल्लभाय नमः'** मन्त्र आता है। अच्छा! देखो! 'सनत्कुमार संहिता में' 35-36 श्रीकृष्ण मन्त्र दिये हैं, उनमें 'राधावल्लभाय' मन्त्र है, 'रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा' मन्त्र है और उसमें बीज अक्षर भी है-क्लीं क्रीम् ह्रीम्। हमारा आपसे कहना है कि आप कभी पण्ढरपुरमें जाकरके रकुमाईका दर्शन कीजिये और वहाँ देखिये कि रुक्मिणी-वल्लभ-श्रीकृष्णकी पूजा कैसी होती है? आप कभी द्वारिकामें जाइये और वहाँ देखिये कि रुक्मिणी-वल्लभ-श्रीकृष्ण कैसे सुशोभित हैं?

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

सीता-रुक्मिणी

यदि आप मूल तत्त्वकी तरफ ध्यान दें, तो रुक्मिणी स्वर्ण-लक्ष्मी हैं और सीता कृषि-लक्ष्मी हैं, 'श्रीसूक्तमें' एक मन्त्र पढ़ते हैं-

गंधद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीष्णिम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।।

यह कृषि-लक्ष्मी हैं। खेतीसे जो अन्न पैदा होता है, वह हमारा धन है-सर्वस्व है। उसकी प्रक्रियाका उल्लेख है-

गंधद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीष्णिम्।

'करीष' माने खाद। 'करीष्णिम्' माने खादवाली। खेतमें गोबर डालनेसे बढ़िया खाद बनती है। खादवाली भूमि चाहिए। वह कृषि-लक्ष्मी भगवती सीता हैं। हलसे जमीन जोती जाती है। उसमें अन्नके रूपमें साक्षात् सीता कृषि-लक्ष्मी ही प्रकट होती हैं। उनका अनादर नहीं करना चाहिए।

संस्कृत भाषामें 'रुक्म' माने 'स्वर्ण' होता है। 'रुक्मिणी' माने 'स्वर्ण-लक्ष्मी।' 'भीष्मक'-उनके पिता समुद्र हैं। 'रुक्मि'-उनका भाई समुद्र-मन्थनके पहले-पहल प्रकट होनेवाला विष है। लक्ष्मीके रूपमें प्रकट होनेवाली साक्षात् रुक्मिणी स्वर्ण-लक्ष्मी-सुवर्णलक्ष्मी हैं।

यदि हम अपनेको भाग्यवान बनाना चाहते हैं, तो हमारे जीवनमें चल-सम्पदाके रूपमें स्वर्ण-लक्ष्मी और अचल सम्पदाके रूपमें कृषि-लक्ष्मीका होना आवश्यक है। भगवत्ताके लिए अन्न और धन-दोनों ही हमारे जीवनमें होना चाहिए। अन्नकी अधिष्ठात्री देवी सीता हैं और धनकी अधिष्ठात्री देवी रुक्मिणी हैं। अतएव, अपने जीवनमें अन्नदायिनी सीता और धनदायिनी रुक्मिणी-दोनोंकी पूजा-अर्चा, आदर-सत्कार हमेशा करना चाहिए।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

भारतवर्ष : तीर्थभूमि

भारतवर्ष पृथिवीका हृदय है। यह प्यारा-प्यारा देश अपनी अनेक विशेषताओंके लिए प्रसिद्ध है। इसकी प्राकृत सम्पत्ति-बड़े-बड़े पर्वत, विशाल नदियाँ, हरे-भरे वन, भिन्न-भिन्न प्रकारकी खानें-अतुलनीय हैं। इसमें छहों ऋतुएँ, बारहों मास क्रीड़ा करती रहती हैं। हिमाचलसे लेकर केरल तक और असमसे लेकर सिन्ध तक इसके ऐसे अनेक भाग हैं कि उनकी विशेषताओंका पृथक्-पृथक् वर्णन करना भी कठिन है।

सिन्ध-प्रदेश

भारतवर्षके पश्चिमी तटपर सिन्धु नदीसे चुम्बित जो पवित्र भूमि है, उसको 'सिन्ध-प्रदेश' कहते हैं। यहाँ के सैंधव अश्व और सैंधव लवण विश्व-विख्यात हैं। यह सिन्ध प्रदेश भूगोल, परम्परा और संस्कृतिकी दृष्टिसे भारतवर्षका ही एक उत्तम भूभाग है। भले ही, अब यह प्रशासनिक षड्यंत्र, विदेशियोंकी कूटनीति अथवा मजहबी कारणोंसे पाकिस्तानके नामसे कहा जाता है। इतिहास साक्षी है कि यह प्रदेश हमारे अनेक महापुरुषोंकी लीला-भूमि, सम्पत्ति और समृद्धिकी क्रीड़ास्थली, व्यापार-कुशल सज्जनोंकी जन्मभूमि और अपने पवित्रतम स्थानोंकी अधिकताके कारण तीर्थभूमि भी रही है।

श्रीद्वारिका-धाम

द्वारिका चारों धामों और सत्पुरियोंमें एक प्रमुख धाम एवं पुरी है। यह समुद्रके पश्चिमी तट पर सौराष्ट्र-प्रान्तमें भारतवर्षकी प्रत्यगात्माके समान विद्यमान है।

संस्कृत साहित्यमें 'पश्चिम' और 'प्रत्यक्' दोनों शब्दोंका अर्थ मिलता-जुलता है। इसीसे यह द्वारिका श्रीकृष्णका परवर्ती निवास-स्थान बना। ऐसा है कि कोई भी महापुरुष अपनी साधना और लीलाके अन्तिम भागमें अपनी प्रत्यगात्मामें ही स्थित होता है।

सौराष्ट्रके सम्बन्धमें एक आश्चर्यकी बात यह है कि यहीं चन्द्रमाको दक्षके शापसे मुक्ति मिलती है। धर्म ही दक्ष है। चन्द्रमा मनका अधिदेवता है। इन्द्रियाँ अथवा रोहिणी आदि दक्षकुमारियाँ चन्द्रमाकी पत्नियाँ हैं। जब मन इन्द्रियोंके साथ सम्बन्ध जोड़कर भोगासक्त हो जाता है, तब धर्म उसे शाप देता है और वह क्षीण हो जाता है। चन्द्रमाको इस शापसे मुक्ति कहाँ मिलती है? समुद्रके पश्चिमी तटपर अर्थात् प्रत्यगात्मामें, कैसे? सोमनाथ भगवान्‌की आराधना करनेपर। यहाँ त्वं-पदार्थ और तत्-पदार्थकी एकता ही आराधना है। इसीसे अधिदैव-चन्द्रमा और अध्यात्म-मनको शान्ति एवम् मुक्ति मिलती है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रीकृष्णके देहोत्सर्गका स्थान भी यही पश्चिमी-समुद्रका तट है। साकारसे निराकार होनेका स्थान प्रत्यगात्मा ही है।

इन सब कारणोंसे, सौराष्ट्रमें श्रीकृष्णधाम द्वारिका, सोमनाथ, देहोत्सर्ग आदि तीर्थोंका अतिशय महत्त्व है। किन्हीं सौभाग्यशाली सज्जनोंको ही इन तीर्थोंके दर्शन-स्नानादिका सुअवसर प्राप्त होता है।

श्रीरामेश्वर-धाम

श्रीरामेश्वरधाम चारों धामोंमें-से एक प्रमुख धाम है। यह दिव्य-स्थान दक्षिण-समुद्रके तटपर है। वैष्णवोंके आराध्यदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी द्वारा प्रतिष्ठित यह शिवलिङ्ग वैष्णवों और शैवोंके पारस्परिक सद्भावका प्रतीक है। साथ-ही-साथ लंकावासी शिव-उपासकोंके लिए श्रीरामचन्द्रका यह मूक सन्देश और आश्वासन भी है कि 'हम केवल धर्मद्रोही रावणके ही विरोधी हैं। तुम्हारे शैव धर्मसे हमारा कोई द्वेष नहीं, प्रत्युत अत्यन्त आदर है।'

श्रीवृन्दावन-धाम

श्रीवृन्दावन-धाम प्रेम और आनन्दकी भूमि है। व्रजके प्रत्येक प्राणीकी बोलीमें संगीत और चालमें नृत्यका ताल है। यहाँकी गली-गलीमें, कुञ्ज-कुञ्जमें श्रीराधाकृष्ण युगलकिशोर अपने ग्वालबालों और गोपियोंके साथ मधुर-मधुर क्रीड़ा करते हैं। यहाँ जहाँ भी जाओ,

सब ओर कुछ-न-कुछ लीला-स्मरण होता है। कहीं रमणरेती है। कहीं चीर-हरण है। कहीं बंशीवट है। कहीं सेवाकुञ्ज है। कहीं निधिवन है। कहीं ब्रह्मकुण्ड, गोविन्दकुण्ड, दावानलकुण्ड हैं। इन्हें देखकर और इनसे सम्बन्धित कथा सुनकर हृदय श्रीकृष्णकी मधुर-मधुर, ललित-ललित लीलाओंकी स्मृतिसे परिपूर्ण हो जाता है। श्रीवृन्दावनधाम श्रीराधाकृष्णकी रसमयी-मधुमयी-लास्यमयी लीलास्थली है।

हरिद्वार-ऋषिकेश

हिमालयकी तलहटीमें हरिद्वार और ऋषिकेषका गंगातट ज्ञान और वैराग्यकी भूमि है। वहाँ जानेपर सहज ही मनमें एक अलौकिक शान्तिका उदय होता है। बड़े-बड़े विरक्त और ज्ञानी महापुरुष उधर हुए और अब भी हैं। अनेक महात्माओंके विशाल और लोकहितकारी आश्रम बने हुए हैं। वहाँ श्रोतागण महात्माओंका सत्संग करके अपना हृदय पवित्र करते हैं और भक्ति तथा तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं। ऋषिकेषमें 'कैलास-आश्रम' भी एक बहुत विशाल, पवित्र एवं ब्रह्म-विद्या प्रधान आश्रम है। 'स्वामी श्रीप्रेमपुरीजी महाराज' पहले वहींके महामण्डलेश्वर थे।

भारतवर्ष तीर्थभूमि है। तीर्थयात्रा करनेसे अनजानमें ही अन्तःकरण पवित्र होता है। नये-नये वन, पर्वत, सरोवर, मन्दिर, आश्रम इत्यादिके दर्शन होते हैं। 'यह भगवान्‌का', 'यह भगवान्‌का', ऐसा कहते हैं और सोचते हुए भिन्न-भिन्न स्थानोंमें जाना होता है। जहाँ नगरमें मनुष्यके ममत्ववाली वस्तुओंके एवं प्राकृत दृश्यमें प्रकृतिके ममत्ववाली वस्तुओंके दर्शन होते हैं वहाँ तीर्थमें भगवान्‌के ममत्ववाली वस्तुओंके दर्शन होते हैं, इससे संसारकी चिन्ता मिटती है। भगवान्‌का बार-बार स्मरण होता है और जीवनमें पवित्रताका संचार होता है। तीर्थयात्राके प्रसंगमें यदि सन्तोंके दर्शन और सत्संग भी हों, तो कहना ही क्या है? तीर्थयात्रा और सत्संगका दोहरा आनन्द मिलता है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

जीवनकी विडम्बना

भगवान् हमारे हृदयमें विराजमान हैं। हमारे सुहृद् हैं। हमसे बोलते हैं। यह बात और है कि हमें अपने ही हृदयमें स्थित भगवान्‌की वाणी सुनायी नहीं पड़ती है। जानते हैं क्यों? क्योंकि हम किसी औरकी बात सुनते होते हैं अथवा किसी औरकी बात करते होते हैं या किसी औरसे अपनी बात बोलते होते हैं। यह हमारे जीवनकी विडम्बना ही है कि हमारे हृदयस्थ भगवान् अपनी कृपा-करुणासे हमसे बात करते हैं और हम अभागे किसी औरके ध्यानमें डूबे रहते हैं। अच्छा! एक बात यह भी है कि कभी तो भगवान् बोलते हैं और कभी हमारी वासना बोलती है। अब हम कैसे पहचानें कि कौन-सी वाणी भगवान्‌की है और कौन-सी वाणी हमारी वासनाकी है?

एक बार गंगा-किनारे कई अच्छे महात्मा एकत्र थे। उनमें यही प्रश्न उठा—'भीतरसे शब्द तो आता है; किन्तु पता नहीं चलता है कि भगवान् बोलते हैं या वासना बोलती है? हम कैसे पहचानें कि यह वाणी रामकी है या कामकी? बहुत लम्बे समय तक सत्संग चला। अन्ततोगत्वा महात्माओंकी चर्चामें यह निर्णय हुआ कि अपने मित्र या शत्रुके लिए-प्रियता या अप्रियताके लिए कही गयी बात भगवान्‌की वाणी नहीं है। यह सम्पूर्ण सृष्टि भगवान्‌का स्वरूप है। सर्वाधिक दृष्टिसे भगवान् सर्वात्मा हैं। निरुपाधिक दृष्टिसे तो संसार है ही नहीं। सोपाधिक दृष्टिसे ही भगवान्‌में सर्वात्मभाव होता है। भगवान् हितस्वरूप हैं। वह

किसीका भी अहित नहीं करते हैं। मंगलमय भगवान् कल्याणस्वरूप हैं। वह ऐसी बात बोलेंगे, जिससे उनकी सृष्टिमें किसीका अनिष्ट न हो। भगवान्‌की वाणीसे किसीके अस्तित्व-ज्ञान-आनन्दपर आँच नहीं लगती है। भगवान्‌की वाणी सद्भाव-चिद्भाव-आनन्दभाव-अद्वयभावसे युक्त होती है।' सच्चिदानन्दद्वयस्वरूप भगवान्‌की वाणी सर्वत्र-सदैव-सर्वथा-सम्पूर्णतः सच्चिदानन्दद्वययुक्त वाणी है।

नारायण! एक व्यक्ति भजन कर रहा था। उसे आकाशवाणी सुनायी पड़ी-'पुत्र! अब तुम विवाह कर लो!' वह एक महात्माके पास गया। उसकी बात सुनकर महात्मा हँसे और बोले-'बेटा! यह कामकी वाणी है। यह रामकी वाणी नहीं है। तुम खूब प्रेमसे पूरा मन लगाकर भगवान्‌का भजन करो!'

मैं प्रतिवर्ष 'गीता जयन्ती' माने वृन्दावनसे मथुरामें गीता-मन्दिरमें जाया करता था। एक वर्ष सबेरे अन्धेरेमें ही चल पड़ा। सहसा एक बड़ा तारा टूटा। चारों ओर उसका हरा प्रकाश फैल गया। उन दिनों भारत और पाकिस्तानका झगड़ा चल रहा था। मेरे भीतरसे वाणी आयी-'अब जिन्ना मरेंगे!' लेकिन, थोड़े दिनों बाद गाँधीजीकी मृत्यु हुई। मेरे मनमें जिन्नासे कुछ द्वेष होगा। अतः जिन्नाकी मृत्युकी वाणी द्वेष-प्रेरित वाणी थी।

नारायण! जब हमारे हृदयमें अपनी वासनानुसार शब्द आता है, तब वह कामकी वाणी होती है। जब हमारे हृदयमें अपनी वासनाके विपरीत वाणी आती है, तब वह भगवान्‌की वाणी होती है। हमारे निर्वासन-निष्काम हृदयमें भगवान् बोलते हैं। हमारे सीधे-सादे, सरल-निर्मल, निश्छल-निष्कपट हृदयमें भगवान्‌की वाणी सुनायी पड़ती है।

बहुत पहलेकी बात है। बचपनमें मैं एक महात्माके पास गया था। उन्होंने एक कथा सुनायी। एक राजा थे। वे एकबार एक ऋषिकुलका-स्कूलका निरीक्षण करने गये। वहाँ उन्होंने एक होनहार-गम्भीर-विद्वान् बालक देखा। पता लगा कि वह अनाथ है। राजाने

मन-ही-मनमें निश्चय किया कि इस बालकको दत्तक पुत्र बना लेंगे और अपना राज्य भी इसे सौंप देंगे। यह बात राजाने किसीसे कही नहीं। केवल ऋषिकुलके अध्यक्षसे कह दिया कि-'इस बालकके पालन-शिक्षणका व्यय हम देते रहेंगे।' बालक मन लगाकर अध्ययन करता था। वह समझता था 'मैं अनाथ हूँ, निर्धन हूँ, पढ़-लिखकर कहीं नौकरी करूँगा और अपने जीवनका निर्वाह करूँगा।' उस बेचारेको पता ही नहीं था कि 'मैं राजकुमार हो चुका हूँ।' खैर! जब अध्ययन पूरा हो गया, तब राजाने उस बालकको अपने पास बुलवाया। वह हाथ जोड़े राजाके सामने आया। राजाने उसे अपने पास राजसिंहासनपर बैठनेको कहा। वह सिर झुकाकर बोला-'राजा साहब! मैं आपके समीप बैठनेकी धृष्टता कैसे कर सकता हूँ?' राजाने प्रेमसे उसकी ओर देखा और पुचकारते हुए कहा-'बेटा! तुम तो मेरे युवराज हो और इस राजसिंहासनके उत्तराधिकारी हो। आओ! आओ वत्स! मेरे समीप बैठो।'

नारायण! भगवान्ने अपनी ओरसे कह तो दिया-'**सुहृदं सर्वभूतानाम्**'; किन्तु आपका सुहृद् कौन है? क्या आप अपने सुहृदको पहचानते हैं? भगवान् तो जानते हैं कि मैं सबका स्वामी, पिता, पुत्र, भाई, मित्र, सर्वस्व हूँ; लेकिन, आप अपने जीवन-सर्वस्व हृदयेश्वरको नहीं जानते हैं। भगवान् हृदयमें ही छिपे हुए हैं और बिना पूछे भी वह हमारेसे बोलते हैं। देखो! धर्मशास्त्रका नियम है कि बिना पूछे किसीको उपदेश नहीं करना चाहिए। '**नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्।**' ठीक है। धर्मशास्त्रका। नियम बहुत बढ़िया है। लेकिन, भाई मेरे। '**अनापृष्टमपि ब्रूयः गुरवो दीनवत्सलाः**। जब गुरु या पिता अपने शिष्य या पुत्रको गलत मार्ग पर जाते हुए देखते हैं, तब वह बिना पूछे ही बोलते हैं। '**कं वार्थमाप्तो मनुजो लक्षेत निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते।**' भला! कोई अन्धेको गड्ढेमें गिरने कैसे दे सकता है? अतः भगवान् स्वयं बोलते हैं; परन्तु कब? जब हम चुप हो जाते हैं। जब वैखरी और मध्यमा वाणी चुप हो जाती है, तब परावाणीसे अन्तर्ध्वनि

प्रगट होती है। हमारे मौनमें भगवान्‌की वाणी सुनायी पड़ती है।

अच्छा! यह तो बताओ कि आपके जीवन-रथका सारथी कौन है? नर या नारायण? जब आप नारायणको अपने जीवन-रथका सारथी बनाते हैं, तब वे स्वयं आपका मार्गदर्शन करनेके लिए बोलते हैं। वस्तुतः नारायण अद्वितीय स्वरूप हैं। वे न रथी हैं और न ही सारथी। भगवान् स्वभावतः तटस्थ-कूटस्थ स्वयंप्रकाश हैं। संसारमें चाहे कोई कुछ सोचे-बोले-करे, भगवान् न किसीको आज्ञा देते हैं और न ही निषेध करते हैं। हाँ! एक बात है। भगवान् शरणागत वत्सल हैं, करुणावरुणालय हैं, कृपा-अनुग्रहशील हैं। जब भी कोई उनके श्रीचरणोंकी शरण-वरण करता है, तब भगवान् उसे अपने हाथोंसे उठाकर अपने हृदयसे लगा लेते हैं और उससे बोलते हैं। जब अपने शरणागतके प्रति ममता होती है कि यह मेरा अपना है और गड्ढेमें गिर रहा है, तब भगवान्‌का हृदय उसके प्रति द्रवित हो जाता है-करुणासे भर जाता है। अपने ममतास्पदके हित-कल्याणके लिए भगवान् बोलते हैं। नारायण! भगवान् कृपा करके-अनुग्रह करके बोलते हैं। भगवान्‌की वाणी सुनता वही है, जिसका हृदय निर्वासन-निष्काम-शान्त-शरणागत-प्रपन्न-मौन होता है।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

निष्काम और निष्प्रयोजन

निष्काम और निष्प्रयोजन-ये दो शब्द दो भिन्न अर्थवाले हैं। निष्काम कर्म भी सप्रयोजन ही किया जाता है। जहाँ अनुबन्ध नहीं होगा, वहाँ वह कर्म व्यर्थ होगा। अतः कर्ममें अधिकारी, विषय, सम्बन्ध और प्रयोजन होना चाहिए। यदि आप व्यापार करते हैं, तो धन कमानेकी कामना रहती है। यदि आप विवाह करते हैं, तो भोग भोगनेकी कामना रहती है। यदि आप धर्म-कर्मानुष्ठान करते हैं, तो भी इहलोक या परलोकको किसी-न-किसी वस्तुकी प्राप्तिकी कामना रहती है। सत्संग भी करते हैं, तो मोक्षकी कामनासे प्रेरित होकर। यदि प्रेम भी करते हैं, तो प्रियतमको सुख पहुँचानेकी कामना मनमें रहती है। प्रियतमको सुखी रखना भी इसलिए चाहते हैं कि उसको सुखी देखकर स्वयंको सुख मिलता है। भाई मेरे! बिना किसी प्रयोजनके मूर्ख-से-मूर्ख व्यक्ति भी कर्ममें प्रवृत्त नहीं होता है। यदि निष्काम कर्म निष्प्रयोजन ही होता हो, तो लाठीसे नदीका पानी पीटते रहो। यह निष्कामके साथ निष्प्रयोजन कर्म है। इसमें व्यर्थ श्रम हुआ। यह साधन नहीं होगा। यह भगवत्प्राप्तिकी ओर नहीं ले जायेगा। अतः निष्प्रयोजन होनेसे काम नहीं बनता है। प्रयोजन क्या? '**अवगतं सत् आत्मनि इष्यते**'-जिसे जानकर हम अपनेमें रखना चाहते हैं, वह प्रयोजन है। निष्कामता भी प्रयोजन है। हम कामनाओंको मिटाकर अपनेमें निष्कामता रखना चाहते हैं।

मैं एक पत्रिकाके सम्पादन-विभागमें काम करता था। एक महात्मा रूठ गये थे। वे उस पत्रिकाको लेख नहीं देते थे। मुझे उन्हें मनाने भेजा गया। वे बोले-'सुना है कि तुम्हारी पत्रिकामें सब महात्मा-ही-महात्मा रहते हैं।' मैं बोला-'हाँ! सब अच्छे लोग रहते हैं।' वे बोले-'मैंने सुना है कि सब निष्काम कर्म करते हैं।' मैं बोला-'हाँ! किसीके मनमें कोई लौकिक इच्छा नहीं है। वे न पैसा चाहते हैं, न कीर्ति।' वे-'एक बात बतलाओ। यदि सरकार आज पत्रिका बन्द कर दे, तो तुम्हारे संस्थापक, संचालक, सम्पादकको कष्ट होगा या नहीं?' मैं-'होगा।' वे-'यदि तुम निष्काम होते, तो तुम्हें कष्ट क्यों होता?' अब भला बताओ!

बात यह है कि आसक्ति चार प्रकारकी होती है-1. फलासक्ति। 2. कर्मासक्ति। 3. कर्तृत्वासक्ति। 4. अकर्तृत्वासक्ति। इन चारोंके आठ भेद होते हैं। फिर एक-एकके दो-दो भेद होते हैं। इस प्रकार, कुल सोलह भेद हो जाते हैं। हम कर्म करके वेतन चाहते हैं। यह फलासक्ति है। हम कर्म करके किसीके धन तो नहीं चाहते हैं; किन्तु यह चाहते हैं कि कर्म सांगोपांग पूरा हो। यह कर्मासक्ति है। 'मैं कर रहा हूँ'-यह कर्तृत्वासक्ति है। असलमें यह तो अभिमान ही है कि 'मैं कर्त्ता हूँ।' यदि आकाश, प्रकाश, वायु, पृथिवी, शरीर इत्यादि न होते, तो हम कोई कर्म कर पाते? अतः कर्त्तापनका अभिमान मिथ्या है। एक महात्माने मुझसे कहा-'यदि तुम कोई पाठ कर रहे होवो और ईश्वर तुमसे कहे-'चुप!' तो तुम्हें चुप हो जानेमें कोई आपत्ति है?' मैंने कहा-'बिलकुल नहीं, कोई आपत्ति नहीं है।' एक महात्मा कहते हैं-'कर्मके विषयमें हमारा कोई वश नहीं है। कोई हमें बलपूर्वक कर्म करनेसे रोक सकता है।' 'मैं अकर्त्ता हूँ'-यह अकर्तृत्वासक्ति है। 'मैं अकर्त्ता हूँ'-यह भी मनकी पकड़ ही है।

नारायण! हम फल पानेमें स्वतन्त्र नहीं हैं। फलमें अपना हाथ नहीं है। जब ईश्वर फल देगा, तब प्राप्त होगा। हम कर्मको पूरा करनेमें भी स्वतन्त्र नहीं हैं। जब काल हमारी मुट्ठीमें होता, तब कर्मको पूरा

करना हमारे हाथमें होता। काल तो हमारे अधीन है नहीं। अकर्त्तापनका अभिमान सर्वथा झूठा है। अकर्त्तापनका अभिमान मनमें तनाव लायेगा। इन चारों प्रकारकी आसक्तिको छोड़कर समप्रयोजन प्रयत्न करो। 'कर्मका फल अच्छा होगा। इस कर्मसे ईश्वर मुझपर प्रसन्न होगा। भगवत्प्रसाद-सिद्ध्यर्थ कर्म करना है। इस कर्मसे अन्तःकरणकी शुद्धि होगी'-ये प्रयोजन हैं।

देखो! यह ध्यान रखना चाहिए कि कर्म पवित्र है और कर्मका फल पवित्र है। यदि कोई कहे-'हम निष्काम भावसे यह पाप कर रहे हैं', तो इसमें कर्म अपवित्र है। उसका फल नरक अपवित्र है। अतः उसमें निष्कामभाव केवल ढोंग है। चोरी, बेईमानी, छल, अनाचार आदि पाप कर्म निष्कामभावसे नहीं होते। मनमें कामना हुए बिना अधर्म हो नहीं सकता है। कर्म भी उत्तम हो और उसका फल भी उत्तम हो, परन्तु उस फलके आश्रित नहीं होना। वेदान्त कहता है-'तुम सर्वाश्रय हो। तुम रस्सी हो। तुम रस्सीमें प्रतीत होनेवाले सर्प नहीं हो। आश्रय सत्य रज्जु है। आश्रित मिथ्या सर्प है। सम्पूर्ण प्रपंचका आश्रयभूत परमात्मा तुम्हारा स्वरूप है।' अब बहुत कहनेसे क्या लाभ? समझदारके लिए संकेतमात्र पर्याप्त होता है। सात्त्विक बुद्धिसे सम्पन्न मनुष्यको जैसे-तैसे थोड़ेमें भी समझा दो, तो वह कृतार्थ हो जाता है।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

महात्माकी दृष्टि

एक दिन 'श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज' रातको हाथरस पधारे। जिनके घर पहुँचे थे, उन्होंने खिला-पिलाकर पूछा-बाबा! आप शयन कहाँ करेंगे? आप जैसे पवित्रात्माके योग्य तो मेरे घरमें कोई बिस्तर, नवीन वस्त्रादि नहीं हैं।' बाबा उसीके पलंगपर जाकर ज्यों-के-त्यों सो गये। उस गृहस्थकी दृष्टिमें बाबाके योग्य कुछ भी नहीं था; किन्तु, बाबाकी दृष्टिमें तो योग्य-अयोग्यका प्रश्न ही नहीं था।

वृन्दावनमें एक सज्जन थे। उनकी कोई व्यक्ति निन्दा करता था। वे श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके पास आये और बोले-'महाराज! वह व्यक्ति मेरी बड़ी निन्दा करता है। मेरा मन उससे बदला लेनेको होता है।' बाबा बोले-'देखो बेटा! बदला क्या लेना है? वह व्यक्ति तो अब छह महीनेके भीतर ही मर जायेगा। छह महीनेके मेहमानको थोड़ा और सह लो!' उन सज्जनके चले जानेपर, मैंने बाबासे पूछा-'बाबा! आपने यह क्या कहा?' बाबाने हँसकर कहा-'बेटा! यह तो प्रसन्न हो गया कि मेरी निन्दा करनेवाला छह महीनेमें मर जायेगा। इससे इसका क्रोध शान्त हो गया। छह महीना बीतनेतक इसे स्मरण भी नहीं रहेगा कि वह व्यक्ति मेरी निन्दा करता था।' यदि मनुष्य राग-द्वेषके पहले झटकेको सह ले और उसके प्रवाहमें बहे नहीं, तो फिर कुछ समयके उपरान्त वह राग-द्वेष प्रभावहीन हो जाता है। इसे समझो। वह व्यक्ति अभी जीवित है। इस बातको छत्तीस वर्षसे भी अधिक समय हो गया है।

एक बार श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजसे किसीने पूछा-'ज्ञान बड़ा या भक्ति?' बाबाने कहा-'भक्ति बड़ी है।' उसने फिर पूछा-'तब ज्ञान क्या है?' बाबाने कहा-'ज्ञानमें छोटा-बड़ा भेद नहीं होता है।'

एक बार सेठ 'श्रीजयदयालजी गोयन्दका'ने सत्संगमें कहा-'यदि ज्ञानी और अज्ञानी-दोनोंका आचरण एक जैसा होगा, तो दोनोंमें भेद ही क्या होगा?' मैंने कहा-'सेठजी! यदि ज्ञान होनेपर ज्ञान और अज्ञानका भेद रह गया, तो क्या ज्ञान हुआ?' सेठजी हँस दिये। अज्ञानी भेद बनाता है। ज्ञानी भेद नहीं बनाता। ज्ञानीकी दृष्टिमें कोई भेद नहीं होता है। अभेद-दर्शन ही ज्ञान है।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽ!! राऽऽऽऽ!!! राऽऽऽऽम!!!!

प्रश्नकर्ताका प्रयोजन

प्रश्नकर्ता सरल होना चाहिए। परीक्षा लेनेके लिए प्रश्न नहीं करना चाहिए। छल-कपट रखकर प्रश्न नहीं करना चाहिए।

मैं वाराणसी गया था। एक पण्डित मेरे पास आये। वे बोले-'मुझे एक श्लोक समझमें नहीं आता है। आप उसका अर्थ बतला दें।' मैंने कहा-'पण्डितजी! अच्छी बात है। आप श्लोक बोलिये।' उन्होंने श्लोक सुनाया, तो मैंने कहा-'यह श्लोक' 'श्रीवल्लभाचार्यजी'के 'तत्त्वदीप-निबन्ध'का है और श्रीमद्भागवतके दूसरे स्कन्धके सम्बन्धमें है। वे पण्डित हँसने लगे और बोले-'अरे! आप तो इस श्लोकका पता-ठिकाना भी जानते हैं। अब आपको इसका अर्थ बतलानेकी आवश्यकता नहीं है।'

नारायण! कहनेका तात्पर्य यह है कि वे पण्डित हमारी परीक्षा लेने आये थे। यह प्रश्न करनेकी उचित रीति नहीं है। असलमें, अपनी जिज्ञासाका समाधान करनेके लिए प्रश्न करना चाहिए। प्रश्नकर्ताको सरल मन होना चाहिए।

'सरल स्वभाव न मन कुटिलाई।'

'मोहिं कपट छल छिद्र न भावा।'

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽ!! राऽऽऽऽ!!! राऽऽऽऽम!!!!

आयु-वृद्धि

नारायण! जब 'श्रीघनश्यामदासजी बिरला'से मेरी पहले-पहल भेंट हुई थी, तब उन्होंने मुझसे, यही प्रश्न किया था कि-'क्या आपके पास आयु बढ़ानेका कोई नुस्खा है?' 'क्या आयु बढ़ानेके लिए Medical Science (चिकित्सा विज्ञान)के अतिरिक्त कोई और उपाय है?' मैंने उनसे उस समय कहा था कि-'आप अपने जीवनमें कोई बहुत बड़ा काम करनेका महासंकल्प कीजिये और उस संकल्पको पूर्ण करनेका पूरी शक्तिसे प्रयास कीजिये। आपकी आयु बढ़ जायेगी।' मेरा यह विचार उनके संस्मरणमें छपा हुआ है।

नारायण! यदि आप अपने जीवनमें कोई ऐसा काम करनेका दृढ़ संकल्प करें, जिसमें आप अपनी पूरी शक्ति एवं पूरी बुद्धि लगा सकें, तो उस संकल्पको दृढ़तासे पूरा करनेके लिए आपकी आयु बढ़ सकती है। आयु बढ़ती न हो, ऐसा नहीं है। हमारे गाँवके लोग तो यह बात जानते थे। हम लोगोंके गाँवमें जब कोई आदमी मरणासन्न होता था, तब बारम्बार एक ही बात कहता-'मुझे काशी ले चलो। अब मुझे तुरन्त काशी ले चलो।' गाँवके लोग उस मरणासन्न आदमीको पालकीमें लेकरके काशीके लिए चलते थे। मार्गमें चलते-चलते, वह आदमी आँख खोलकरके पूछता-'क्या हम काशी पहुँच गये?' जब उससे कहा जाता-'नहीं! अभी नहीं पहुँचे।' तब वह आदमी फिरसे आँख बन्द कर

देता और मृतप्राय होकर पड़ा रहता। घण्टे-आध-घण्टेमें पुनः पूछता-'क्या हम काशी पहुँच गये?' जहाँ उसको कहा जाता-'हाँ! अब हम काशी पहुँच गये', वहाँ देखते-ही-देखते उसके प्राण निकल जाते। नारायण! यदि आपके चित्तमें कोई धर्मानुकूल उत्तम-से-उत्तम दृढ़ संकल्प हो और उस संकल्पको पूर्ण करनेकी दृढ़ आकांक्षा हो, तो आपकी आयु बढ़ सकती है। आयु बढ़ानेका यही नुस्खा है।

श्रीबिरलाजीने दूसरा प्रश्न यह किया था कि-'मृत्यु क्या है?' मैंने कहा था कि-'परमार्थ दृष्टिसे, मृत्यु नामकी कोई वस्तु नहीं है। न मिट्टी मरती है, न पानी मरता है, न आग मरती है, न हवा मरती है और न आकाश मरता है। तत्त्वकी मृत्यु कभी होती ही नहीं है। आकारकी ही मृत्यु होती है। आकार टूट-फूट जाता है। वस्तुकी मृत्यु होती ही नहीं है। भले ही, वैज्ञानिक लोग किसीकी आयु बढ़ाकर चार-पाँच सौ वर्ष कर दें अथवा हजार वर्ष कर दें; लेकिन, आकृति तो फूटेगी-ही-फूटेगी। हाँ! यदि आप अपने जीवनमें कोई महासंकल्प धारण करें, तो वह इस जन्ममें तो आपकी आयु बढ़ायेगा ही; बल्कि, अगले जन्ममें भी वह महासंकल्प आपको वैसा ही संकल्प पूर्ण करनेके लिए बुद्धि देगा, प्रोत्साहन देगा, शक्ति देगा और बहुत ही पुण्यात्मा बनावेगा। इसलिए, आप अपने जीवनमें कोई उत्तम-से-उत्तम कार्य करनेका महासंकल्प धारण कीजिये। और उस महासंकल्पको पूर्ण करनेकी दृढ़ आकांक्षा रखिये। अपनी पूरी बुद्धि और शक्तिका सदुपयोग करते हुए अत्यन्त दृढ़तापूर्वक अपने महासंकल्पको पूर्ण करनेका प्रयास कीजिये। यही आयु बढ़ानेका नुस्खा है।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

मनोबल

यदि आप अपने जीवनमें कोई नियम धारण करेंगे, तो आपका मनोबल बढ़ेगा। आप यह नियम कीजिये कि इतना जप किये बिना, इतनी पूजा किये बिना, इतना पाठ किये बिना, इतना स्वाध्याय किये बिना, हम भोजन नहीं करेंगे। अब जिस दिन जप-पूजा-पाठ-स्वाध्याय करनेमें देर हो जाये, उस दिन थोड़ा कष्ट सहिये। जब आप कष्ट सहकर अपने नियमका पालन करेंगे, तब आपका मनोबल बढ़ेगा। जो तकलीफ सहनेको तैयार नहीं है, उसका मन कमजोर हो जाता है। यह तो एक साधारण नियम है।

अब आप दूसरी बात देखिये। आप किसी पर श्रद्धा कीजिये कि वह हमारी रक्षा करेगा। युद्धभूमिमें एक सैनिक लड़ते-लड़ते गिर पड़ा; लेकिन, उसकी बन्दूक सीधी रही; क्योंकि, उसको यह विश्वास था कि हमारे पीछे सेनापति है। हमारे पीछे राष्ट्रपति है। हमारे पीछे सारा राष्ट्र है। उसको यह विश्वास था कि हमारे पीछे सेना आयेगी, सहायता आयेगी और हम इस युद्धमें विजयी होंगे। इसी तरह, आप जो भी काम करें, इस विश्वासके साथ करें कि आपके पीछे आपका शास्त्र है-संविधान है; आपके गुरुदेव हैं, आपके प्रभु हैं। आप अपना प्रत्येक काम पूर्ण विश्वासके साथ करें कि हमारे शास्त्र-संविधान, गुरुदेव, ईश्वरकी ओरसे हमारी सहायता होगी। जब आपके जीवनमें श्रद्धा बनी रहेगी, तब आपका मनोबल भी बना रहेगा।

अच्छा! अब हम आपको एक बात और बताते हैं। जब हम अपने सरीखे और लोगोंको देखते हैं, तब उनकी देखा-देखी भी हमारा मनोबल बढ़ता है। जैसे, हम कहीं नाव पर चले जा रहे हैं। बड़े जोरसे आँधी-तूफान आने लगे। नाव डाँवाडोल होने लगी। उसी समय मनमें आया-'घबराते क्यों हो? धीरज रखो। हिम्मतसे काम लो। जो सबका होगा, वही हमारा भी होगा।' बस! दूसरोंको अपनी अवस्थामें देखकर अपना मन भी बलवान् हो गया। इस तरह, अपने सरीखे और लोगोंको देखने-सुननेसे भी मनोबल बढ़ता है।

भगवन्नोच्चारणसे भी मनोबलमें वृद्धि होती है। जब आप भगवान्‌के नामका संकीर्तन करते हैं, तब आपके अन्नमय कोशका एक अंश, प्राणमय कोशका एक अंश, मनोमय कोशका एक अंश, विज्ञानमय कोशका एक अंश आनन्दमय कोशका एक अंश आपसमें मिल जाते हैं। भगवन्नामोच्चारणमें आपके पाँचों कोश एक साथ मिलकर ऐसी क्रियाको पूर्ण करनेमें लगते हैं, जो आपके मानसिक बलको बढ़ाने वाली है। आप इसको एक सामान्य क्रियाके रूपमें मानिये।

इस प्रकार, अपने मनोबलको बढ़ानेके लिए अपने जीवनमें दृढ़तापूर्वक कोई नियम धारण करना चाहिए और कष्ट सहकर भी उस नियमका पालन करना चाहिए। अपने शास्त्र-संविधान, गुरुदेव और ईश्वरकी ओर होनेवाली सहायता-रक्षा पर पूर्णरूपेण श्रद्धा होनी चाहिए। अपने साधनका विधिपूर्वक अनुष्ठान होना चाहिए। संकटके समयमें अपने सरीखे और लोगोंकी स्थिति पर भी ध्यान देना चाहिए। प्रेम-मुदित मनसे भगवन्नामोच्चारण करना चाहिए।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

स्वभाव विजय

एक सज्जन आये। कुछ देर बैठे और फिर सुअवसर देखकर उन्होंने मुझसे एक प्रश्न पूछनेकी आज्ञा माँगी।

प्रश्न—मैं पन्द्रह-बीस वर्षोंसे महापुरुषोंके सान्निध्यमें हूँ। फिर भी, मेरे स्वभावमें कोई परिवर्तन नहीं आया है। इसका क्या कारण है? क्या **'स्वभावो दुरतिक्रमः'** है अथवा इसमें मेरे प्रयत्नकी न्यूनता है? कृपया प्रकाश डालें।

उसकी सरलता-विनम्रता-जिज्ञासा देखकर मेरे हृदयमें प्रश्न समाधान करनेकी प्रेरणा हुई। हाँ देखो! ऐसा है कि यह स्वभाव अपना स्वरूप नहीं है। स्वभाव तो बनता है। वैदिक संस्कृतिमें ऐसा मानते हैं कि यह स्वभाव कुछ तो जीवके पूर्व-जन्मके अनुसार बनता है। कुछ माता-पिताकी ओरसे बनता है। कुछ दादा-दादीकी ओरसे बनता है। कुछ नाना-नानीकी ओरसे बनता है। कुछ खान-पानादिसे बनता है—इत्यादि-इत्यादि। स्वभाव सर्वथा कर्मजन्य है। स्वभाव बनाया जाता है। इसलिए अपने उत्तम स्वभावका निर्माण करो। सबसे बड़ा बहादुर व्यक्ति वही है, जो अपने स्वभावको उत्तम-से-उत्तम बनाये।

श्रीमद्भागवतमें एक प्रश्न उठाया गया—'सबसे बड़ी बहादुरीका काम क्या है? श्रीकृष्णने उद्धवको बताया—'स्वभावविजयः शौर्यः।' सबसे बड़ी बहादुरीका काम है—अपने स्वभावपर विजय प्राप्त करना। सबसे बड़ी शूरता-वीरता है—अपने स्वभावको अपने वशमें रखना। यदि आपके जीवनमें बिना सोचे-बिचारे कोई आदत पड़ गयी हो, तो आप उसका भूत-भविष्य देखकर, उसके परिणामपर विचार करके, अपनी उस बिगड़ी हुई आदतको सुधार सकते हैं। किसी-किसीको गाली देनेकी आदत पड़ जाती है। बचपनमें हमारे यहाँ एक थानेदार

था। उसको ऐसी-ऐसी गाली देनेकी आदत पड़ गयी थी कि हम उन्हें इस भरी सभामें दुहराना पसन्द नहीं करते हैं। वह अपनेको ही गाली दिया करता था। जैसे हम लोग किसीको दुश्मनीसे गाली देते हैं, वैसे वह अपना नाम भी लेता तो खूब गाली देकर बोलता था। यह आदत अच्छी नहीं है। इस आदतको बदला जा सकता है।

यदि आपके स्वभावमें कोई दोष है और आपको अनुभव होता है कि दोष है और आप समझते हैं कि मेरे इस स्वभावमें परिवर्तन होना चाहिए, तो आपकी समझमें, आपके दृढ़ संकल्पमें, आपके अन्दर छिपी हुई शक्तिमें आपके इस स्वभावको बदलनेका सामर्थ्य है। हमने बिगड़े हुए लोगोंको बनते हुए देखा है। हमने दुश्चरित्रोंको सच्चरित्र होते हुए देखा है। हमने दुर्जनोंको भी सज्जन होते देखा है। हमने दुरात्माको महात्मा होते देखा है। जब स्वभाव एक बनी हुई चीज है, तब हम उसको क्यों नहीं बदल सकते?

नारायण! उत्कर्षके लिए तपस्या चाहिए। देखो! विश्वामित्र तपस्यासे क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये। क्षत्रिय-प्रकृति ब्राह्मण-प्रकृतिके रूपमें बदल गयी। यह तपस्याका प्रभाव है। शास्त्रोंमें ऐसा भी वर्णन मिलता है कि हरिण-योनिमें, जो मनुष्यसे सन्तान हुई, वह ऋषि हो गयी। ऐसा भी वर्णन आता है कि पिछड़ी जातियोंमें जो ऋषियोंसे सन्तान हुई, वह बहुत बड़े ऋषिके रूपमें हो गयी। आप क्यों ऐसा सोचते हैं कि '**स्वभावो दुरतिक्रमः।**' तपस्यासे क्या सम्भव नहीं है? आप डरिये मत। आप घबड़ाईये मत। आप निराश मत होईये। अपने शास्त्रोंमें तो वर्णन आता है कि विश्वामित्रने नयी सृष्टि बना दी। सागरके पुत्रोंने नया समुद्र बना दिया। समुद्रका बाँध लिया। आप अपनी शक्तिसे अनभिज्ञ मत रहिये। उसको जानिये और उत्साहसे अपनी शक्तिका प्रयोग कीजिये। आप क्या नहीं कर सकते हैं? आप सब कुछ कर सकते हैं। आप जो पाना चाहते हैं और तदर्थ जो करना चाहते हैं, उसमें पूर्ण उत्साहके साथ लग जाईये। उत्साहसे ओत-प्रोत होकर किये गये तपका प्रभाव अद्भुत होता है।

उत्साह हमारे जीवनका सबसे शक्तिशाली अंग है।

क्रियासिद्धि सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे।

महापुरुषोंकी क्रियासिद्धि सामग्रीमें निवास नहीं करती है। महापुरुषोंकी सिद्धि उत्साहमें निवास करती है। महात्माओंके जीवनका सबसे शक्तिशाली अंग है-उत्साह। क्या महात्मा गाँधी अकेले एक व्यक्ति नहीं थे? भला बताओ! उन्होंने इस सृष्टिमें क्या आश्चर्यजनक कार्य नहीं किया? अच्छा! क्या महात्मा बुद्ध अकेले एक व्यक्ति नहीं थे? क्या महावीर अकेले एक व्यक्ति नहीं थे? क्या ईसा अकेले एक व्यक्ति नहीं थे? क्या मोहम्मद अकेले एक व्यक्ति नहीं थे? परन्तु; देखो! क्या अद्भुत महिमा है? आज हमारे ऋषियोंका, हमारे महात्माओंका, हमारे आचार्योंका जो प्रभाव उत्साहका फल नहीं है? आज हमारे शंकराचार्यका, रामानुजाचार्यका, हमारे निम्बार्काचार्यका जो वैभव दिखायी पड़ता है, यह क्या किसी एक महापुरुषके उत्साहसे भरपूर ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्तिका फल नहीं है?

नारायण! प्रत्येक जीवका सम्बन्ध ईश्वरसे है। उसके जीवनकी डोर ईश्वरसे जुड़ी हुई है। उसके जीवनकी धारा ईश्वरसे संयुक्त है। प्रत्येक जीवके जीवनका तार ईश्वरसे जुड़ा हुआ है। यदि वह खींचेगा, तो उस एक व्यक्तिमें ईश्वरीय आविर्भाव हो जायेगा और फिर, वह सब कुछ कर सकता है। अतएव, किसीको अपने जीवनसे निराश नहीं होना चाहिए। आप बड़े उत्साहसे अपने कर्त्तव्य कर्ममें जुट जाइये। अपनी ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिका सोत्साह सदुपयोग कीजिये। निश्चय ही आपको सफलता मिलेगी। महापुरुषोंका सान्निध्य-लाभ आपके स्वभावमें निखार लायेगा। उत्तम-से-उत्तम स्वभावका निर्माण होगा। सत्संग करते रहो।

हरि से लागा रहु रे भाई, तेरी बनत-बनत बन जाई।

स्वभावविजयी भव।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

धर्मकी शिक्षा

प्रश्न उठता है-हम लोग मनुस्मृति इत्यादि धर्म शास्त्रोंका अध्ययन तो कर नहीं सकते हैं। यदि धर्मशास्त्रोंको पढ़ते भी हैं, तो समझ नहीं पाते हैं। अपने जीवनमें धर्मको कैसे अनुष्ठित करें?

नारायण! ऐसा करो कि आपके कुलका जो एक पुरोहित हो, उसको बचपनसे ही संस्कृत पढ़नेकी व्यवस्था कर दो। जब वह खूब विद्वान हो जायेगा, तब आपको आपके धर्मकी शिक्षा देता रहेगा। देखो! यही कारण है कि धर्मशास्त्रमें तो ऐसे कहा है कि यदि पुरोहितसे मंत्र बोलनेमें गलती होती है तो उसका दोष यजमानको लगता है! यजमानने अपने कर्त्तव्यका ठीक पालन नहीं किया। उसने अपने गोत्रके पुरोहितको-परिवारके पुरोहितको पढ़ा-लिखाकर योग्य नहीं बनाया! इसलिए पुरोहितके मंत्रोच्चारणमें दोष होनेपर यजमानको दोष लगता है। नारायण! यदि आप सन्ध्यावन्दन नहीं जानते हैं, तो उसको सिखानेवाला पुरोहित होना चाहिए। यदि आप गायत्री-जप नहीं जानते हैं, तो उसको सिखानेवाला पुरोहित होना चाहिए। यदि आप मनुस्मृतिका धर्म नहीं जानते हैं, तो उसको सिखानेके लिए पुरोहित होना चाहिए। जैसे मुसलमानोंमें मौलवी होता है, ईसाइयोंमें पादरी होता है, पारसियोंमें दस्तूर होता है, वैसे आपको

कोई-न-कोई व्यवस्था करनी चाहिए। किसी पुरोहितकी व्यवस्था करो, जो आपको आपका नित्य कर्म बतावे। कैसे उठना? कैसे बैठना? कैसे जगना? कैसे खाना-पीना? कैसे बोलना-चालना? कैसे अपने जीवनको मर्यादित करना?

देखो! हमारे परिवारके बालक हैं। वे आठ बजे सोकर उठते थे। उनके पिताको ग्यारह बजे फोन किया, तो मालूम पड़ा कि अभी-अभी सोकर उठे हैं और 'बाथरूम' में गये हैं। अब महाराज! उन्हींको और उनके बच्चोंको डॉक्टरोंने बताया है कि तुम्हारे शरीरमें 'कोलेस्ट्राल' (Cholestoral) बढ़ रहा है। यदि सुबह उठकर सैर नहीं करोगे, तो बीमार पड़ जाओगे। निश्चित रूपसे नाड़ियोंमें चिकनाई जम जायेगी। 'हार्टट्रबल' (Heart trouble)का डर होगा। महाराज! अब वे और उनके सब लड़के पाँच बजे उठकर दौड़ते हैं। 'जॉगिंग' (Jogging) करते हैं। अभिप्राय यह है कि वे धर्मकी दृष्टिसे तो उठनेको तैयार नहीं है; लेकिन, शरीरकी दृष्टिसे उठनेको तैयार हैं। उनको शरीरका मोह है और मोहमूलक प्रवृत्ति है। यदि कोई स्त्री संकेत दे दे कि पाँच बजे मैं तुमसे मिलूँगी, तो रात भर नींद नहीं आवेगी। सुबह-सुबह ही उठकर चले जायेंगे। यह स्त्रीके प्रति काममूलक प्रवृत्ति है। अरे! अगर यह ख्याल हो जाये कि एक बहुत बड़ा सौदा लाखों-करोड़ों रुपयोंका मिलनेवाला है, तो रात भर गोष्ठी चलेगी। महाराज! ये व्यापारी लोग रात भर जागते हैं। पैसेके प्रति लोभ रात-रात भर इन सेठोंको जगाता है। अच्छा! यदि उनसे कहो कि 'जरा सबेरे उठा करो, सत्संगमें आया करो,' तो साफ-साफ कह देते हैं कि 'महाराज! धर्म-कर्ममें हमारी बिलकुल ही रुचि नहीं है।' अगर रुचि हो, तो आप लोग उपन्यास पढ़ते हैं, कहानी पढ़ते हैं, गड़े मुर्दे उखाड़नेवाले इतिहास पढ़ते हैं। धर्मकी पुस्तकें पढ़नेमें आपको रुचि नहीं है? धर्मकी पुस्तकें पढ़नेमें आपकी प्रवृत्ति नहीं है?

नारायण! यदि आप सचमुचमें चाहें, तो धर्मशास्त्रोंके अध्ययनमें आपकी रुचि हो सकती है। धर्मके प्रति महत्त्वबुद्धि

होनेपर ही धर्म-कर्ममें रुचि होती है। यदि आपकी रुचि हो, तो आप धर्मकी पुस्तक पढ़ भी सकते हैं। जहाँ-जहाँ समझमें न आवे, वहाँ-वहाँ निशान लगा दिया करो। कभी वृन्दावनमें आओ तो हम समझा देंगे और कभी हम यहाँ आवें, तो पूछ लिया करना। अपनी मनमानी नहीं करनी चाहिए। अपनेको मनोमुखी नहीं बनाना चाहिए। आज तुम अपने मनसे अच्छा काम करोगे; लेकिन जब तुम्हारा मन काबूसे बाहर हो जायेगा, तब वह तुम्हें ले जाकर बुरे काममें भी डाल देगा। इसलिए, अच्छा काम भी मनमाने ढंगसे नहीं करना चाहिए। पहले अपनेसे बड़ोंसे-बूढ़ोंसे पूछ लेना चाहिए, उनकी सलाह लेनी चाहिए, तब करना चाहिए। जीवन वासनानुसारी नहीं होना चाहिए। जीवन शासनानुसारी होना चाहिए। गुरुमुखी होना चाहिए। श्रेष्ठ अनुभवी महापुरुषोंकी छत्रछायामें रहकर जीवन जीनेकी कला सीखनी-समझनी चाहिए। सत्पुरुषोंके जीवनके अनुभवोंका लाभ उठाना चाहिए और आनन्दसे भरपूर जीवन जीना चाहिए।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

बालकके लिए शिक्षा

मैं मुम्बईमें अपने आसन पर बैठा हुआ था। श्रीमती स्नेह राजीव बत्रा अपने छोटे-से शिशु आशीषको लेकर मेरे पास आयी थीं। बालकको मेरे लकड़ीके आसनसे चोट लग गयी। वह रोने लगा। मैंने कहा–'बेटा! इस तख्तेसे तुमको चोट लगी है। तुम भी इसको मारो।' बच्चा रोता रहा। उसकी माँ स्नेहने कहा–'बेटा! जिससे तुमको चोट लगी है, उसको 'Kiss'(चुम्बन) दो। आशीषने तख्तेको चूम लिया और उसका रोना बन्द हो गया। वह हँसने-खेलने लगा।

अब वह बालक 12-13 वर्षका हो चुका है। इतना प्रसन्न, समझदार और शिष्ट है कि देखकर आश्चर्य होता है।

यदि माता-पिता सावधान रहकर अपने बालकोंको ऐसी शिक्षा दें, तो उनके जीवनका कितना अच्छा निर्माण हो सकता है।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

बच्चोंका अनुशासन

देखो! समय बदलता है। स्थान बदलते हैं। कानून बदलते हैं। लोगोंकी धारणाएँ बदलती हैं। परिस्थितियाँ बदलती हैं। सामाजिक परिस्थिति है। राजनीतिक परिस्थिति है। पर्यावरणकी परिस्थिति है। बच्चोंके संग-साथकी परिस्थिति है। सम्पूर्ण विश्वमें जो वैज्ञानिक उन्नति हो रही है, उसकी परिस्थिति है। उसको देख करके बच्चेके जीवनको बनाना चाहिए। यदि आपकी अवस्था साठ वर्षकी है, तो आप यह सोच लो कि आपके माता-पिताने साठ वर्ष पहले जैसे आपको गढ़ा था, क्या आप अपने बच्चोंको भी वैसे ही गढ़ना चाहते हैं? परिस्थितिके अनुसार बच्चोंके जीवनको अनुशिष्ट करना चाहिए।

यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि बच्चे आजकलके वातावरणको, पर्यावरणको, परिस्थितिको-सामाजिक और संवैधानिक परिस्थितिको भी पार करने जा रहे हैं। आजसे दस-पन्द्रह-बीस-तीस वर्षोंके बाद विश्वकी जो परिस्थिति होगी, उसमें उनको काम करना होगा। ऐसी स्थितिमें, यदि आप उनको पचास वर्ष या पाँच सौ वर्ष या दो हजार वर्ष पीछे धकेलना चाहेंगे, तो वे कदापि अनुशासित नहीं होंगे। बच्चे आपके नाजायज अनुशासनका अतिक्रमण करेंगे। अतः बदलती हुई परिस्थितियोंको ध्यानमें रखते हुए, उदीर्ण दृष्टिसे सोच-समझकर, अत्यन्त सावधानीपूर्वक बच्चोंका अनुशासन करना चाहिए।

यदि आप बुद्धिपूर्वक बच्चोंका अनुशासन करेंगे, तब तो वह ठीक होगा। यदि आप अपनी संकीर्णतामें बच्चोंकी उदीर्णताको प्रतिबन्ध लगावेंगे, तो वे आपके अनुशासन उल्लंघन करेंगे। जो बच्चे विकसित हो रहे हैं-बढ़ रहे हैं, उनपर यदि अनावश्यक रोक लगावेंगे, तो वे आपके अनुशासनको पारकर जायेंगे। आपने देखा होगा कि जब कोई पौधा धरतीमें-से निकलता है और ऊपरकी ओर बढ़ने लगता है, तब यदि हम कभी उसपर ईंट रख दें, तो वह पौधा घूमकर स्वयं अपना रास्ता बदलकर ईंटके बाहर हो जाता है और ऊपरको बढ़ता है।

इसलिए, बच्चोंके सम्बन्धमें बहुत सावधानी रखनेकी आवश्यकता है। यदि अभी उनकी बुद्धि विकसित नहीं हुई हो, तो उतना ही अनुशासन उनके ऊपर होना चाहिए कि वे किसी ऐसे मार्गमें न पड़ जायें, जो उनको उल्टी दिशामें ले जाये अथवा और भी अधिक नीचे गिरा दे। बुद्धिपूर्वक अत्यन्तावश्यक अनुशासन होना चाहिए।

एक दिनकी बात है। मेरे पास अलीगढ़ विश्वविद्यालयके एक सज्जन आये। वेदान्तकी चर्चा चलने लगी। बात करते-करते तीन घंटे हो गये। जब 'श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज'को मालूम पड़ा कि तीन घंटेसे मैं वेदान्त-चर्चा कर रहा हूँ, तब वे अपनी कुटियामें-से उठ करके मेरी कुटियामें आये। मेरी कुटिया दूसरे कोनेमें थी। उनके आनेपर हम लोग उठ गये। बाबा बोले- 'बेवकूफ! तेरी समझमें जो बात बीस वर्षमें आयी, उसको तू आज एक दिनमें ही इस नादानको समझाना चाहता है रे? चलो उठो। कुछ खाओ-पीओ। थोड़ा विश्राम कर लो।' नारायण! आपका अनुभव तो है-पचास-साठ-सत्तर वर्षोंका और आप अपने अनुभवको एक छोटेसे बालकके दिमागमें शीघ्रातिशीघ्र घुसेड़ना चाहते हो। यह कैसे सम्भव हो सकता है? हर एक वस्तुको ग्रहण करनेमें समयकी अपेक्षा रहती है। समयकी मर्यादाका पालन करना पड़ता है। बच्चोंको एकाएक अनुशिष्ट नहीं किया जा सकता। धीरे-धीरे समयानुसार बच्चोंका अनुशासन किया जाता है।

अच्छा! एक बात ध्यान देने योग्य है। बच्चे आदेश-उपदेश नहीं मानते हैं। बच्चे अनुकरण करते हैं। बच्चोंका स्वभाव अनुकरणशील होता है। आप अपने बच्चोंको जो अनुशासन देना चाहते हैं, उसके अनुसार आप स्वयं आचरण कीजिये। आप जैसा-जैसा आचरण करके बच्चोंको दिखावेंगे, वे भी वैसा-वैसा आचरण करेंगे। बच्चे अनुशासनका आदेश नहीं मानते हैं। वे आचरणका अनुकरण करते हैं। वे आपके आचरणकी नकल करेंगे। आपके बड़े-बड़े उपदेशोंमें उनकी रुचि-प्रवृत्ति नहीं होती है। अतः बच्चोंको अनुशासित करनेमें आपका स्वयंका आचरण ही सर्वस्व है। आप सबसे पहले अपने आपको अनुशासित करें। स्वयं तो गुड़ खायें और बच्चोंको गुड़ खानेसे रोकें, तो कोई मानेगा? आपकी बातका तनिक भी

असर नहीं पड़ेगा। सर्वप्रथम स्वयं संयम करें-गुड़ खाना छोड़ें, तब बच्चोंको गुड़ खानेके लिए मना करें। देखो! आपकी वाणीमें शक्ति होगी। आपकी बातका प्रभाव बच्चोंके चित्त पर पड़ेगा। वे भी गुड़ खाना छोड़ देंगे। पहले अपने आपको तो अनुशिष्ट करो और फिर, देखो! आपका आदर्श आचरण स्वयमेव बच्चोंको अनुशिष्ट करेगा।

बच्चोंको अनुशिष्ट करनेमें आप अपनी परिस्थितिका ध्यान मत रखिये। बच्चोंके जीवनमें आगे जो परिस्थितियाँ आनेवाली हैं, उनका ध्यान रखिये। आगे हमारी बात क्षणोंमें सारे विश्वमें फैल जायेगी। हम घंटोंमें सारे विश्वमें जा सकेंगे। हमारे व्यापारकी रूपरेखा बदल जायेगी। हमारी खेतीकी रूपरेखा दूसरी होगी। हमारी भाषाकी रूपरेखा भी दूसरी होगी। हमारे बचपनमें जो हिन्दी थी, वह आज कहाँ है? तो, भाषा भी बदलेगी। संविधान भी बदलेंगे। सरकारें भी बदलेंगी। विश्वमें बड़ी भारी उथल-पुथल होगी। देखो! आप अपने बच्चोंको इस प्रकार अनुशासित करें कि वे हर हालमें खुश रहें। चाहे कैसा भी राज्य हो, चाहे कैसा भी स्वराज्य हो, चाहे कैसी भी सरकार हो, कैसी भी परिस्थिति हो, कैसी भी भाषा हो, चाहे कैसा भी भेष हो, बच्चोंको कोई भी कठिनाई न हो। आप अपने बच्चोंको ऐसी शिक्षा दें कि वे प्रत्येक देश-काल-वस्तु-व्यक्ति और परिस्थितिमें बिल्कुल ठीक-ठीक 'फिट' 'Fit' बैठ जायें। कहीं कोई विरोध न हो। कहीं कोई विवाद न हो। समझौता ही जीवन हो। सहिष्णुता ही सिद्धि हो।

'पूरे हैं वही मर्द, जो हर हालमें खुश हैं।'

'राजी हैं हम उसीमें, जिसमें तेरी रजा है।
यहाँ यों भी वाह-वाह है, वहाँ वों भी वाह-वाह।

कहीं कोई शिकवा-शिकायत न हो। सदा आनन्द-ही-आनन्द हो। जब बच्चोंका अन्तःकरण इस तरहसे अनुशासित होगा, तब उनके जीवनमें सर्वत्र-सर्वदा-सर्वथा सुख-शान्ति आनन्दका अनुभव होगा। उनका सान्निध्य प्राप्त करनेवाले लोगोंका जीवन भी सुख-शान्ति-आनन्दसे भरपूर होगा।

इस बातको ध्यानमें रखकर बच्चोंके जीवनमें विकासके लक्षणोंके अनुसार उनका अनुशासन करना चाहिए। आप धीर-गम्भीर दृष्टिसे अपने बच्चोंका निरीक्षण करें। उनके जीवनके विकासके लक्षणोंका अनुसन्धान करें। तदनन्तर उनका अनुशासन करें। निश्चय ही बच्चोंको आपका अनुशासन मान्य होगा। हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें इस विद्याका उल्लेख मिलता है। एक दिन बालकका संस्कार होता है। आँगनमें धरती खोदकर, स्वच्छ करके, चौका पोतकर, गौरी-गणेशकी पूजा करके, बड़ी पवित्रताके वातावरणमें बालकके सामने कई चीजें रखी जाती हैं। हीरा-मोती, सोना-चाँदी, मणि-माणिक रखे जाते हैं। पुस्तक-लेखनी रखे जाते हैं। अस्त्र-शस्त्र रखे जाते हैं। झाड़ू-ब्रश इत्यादि रखे जाते हैं और फिर देखा जाता है कि उसका सहज स्वाभाविक आकर्षण किस वस्तुकी ओर होता है। इस प्रकार, बालककी सहज-स्वाभाविक आकर्षण किस वस्तुकी ओर होता है। इस प्रकार, बालककी सहज-स्वाभाविक रुचि देखकर योग्यता देखकर उसकी शिक्षाका निश्चय किया जाता है। यह जो आप *'सोलहों धान, बाईस पसेरी'* बेचना चाहते हैं। उससे काम नहीं बनेगा। आप अपने बच्चोंकी प्रकृतिका अच्छी तरहसे अध्ययन करें और तदनुसार उनका अनुशासन करें। आपके बच्चोंकी योग्यताका सदुपयोग हो, ऐसी शिक्षा प्रदान करें। उनके जीवनमें स्वार्थपरक वृत्ति बढ़ने न पाये। उनके जीवनमें अभिमानकी वृद्धि न हो। यह अनुशासन तभी सफल होगा, जब आपका स्वयंका जीवन अनुशासित हो। आप स्वयं अपनी योग्यताका सदुपयोग करें। आप स्वयं अपने जीवनमें निष्काम, निःस्वार्थता प्राप्त करें। आप स्वयं निरंहकारी-निरभिमानी बनें। आपके अनुशिष्ट जीवनका अनुकरण करनेपर आपके बच्चोंका जीवन स्वयमेव अनायास ही अनुशिष्ट हो जायेगा। आप निश्चिन्त रहें। आपके स्वयंके जीवनका अनुशासन परम्परासे बच्चोंके जीवनको अनुशासित करेगा।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

पति-पत्नीमें लड़ाई-झगड़ा

जब पति-पत्नीमें लड़ाई-झगड़ा बढ़ जाये और पति-पत्नीको चिल्ला-चिल्लाकर गाली देने लगे, बुरी तरह मारने लगे, घरसे निकल जानेको कहे, तब पत्नीको क्या करना चाहिए?

सही बात तो यह है कि जब धर्मके अनुसार अग्निको साक्षी देकर विवाह हुआ है अथवा प्रेमसे रजिस्ट्रीसे विवाह हुआ है, तब बहुत करके पत्नीको सहिष्णुताका बर्ताव करना चाहिए। पत्नीकी सहिष्णुताके सामने पतिका उद्वेग-जोश शान्त हो जायेगा। जहाँ तक हो सके, पतिके उद्विग्न होनेपर भी पत्नी अपनी सेवामें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डाले। सेवा करती रहे।

एक पिता और पुत्रमें कुछ विवाद हो गया। पिताजी अलग होकर अकेले रहने लगे। पुत्र और वधू अलग रहने लगे। वधूके मनमें अच्छा नहीं लगता था। बुढ़ापेमें श्वसुर अलग अकेले रहें यह उसके मनको खूब खटकता था। लेकिन, पतिको कुछ कह भी नहीं पाती थी। बाप-बेटेकी लड़ाईमें बोल भी नहीं सकती थी। खैर! उसने हिम्मत की। जब पतिदेव खा-पीकर ऑफिस चले जाते, तब पत्नी अपने श्वसुर पिताजीके घर चली जाती। वहाँ जाकर उनके लिए भोजन बनाती। प्रेमपूर्वक भोजन खिलाती। उनका आशीर्वाद लेकर अपने घर लौट आती। इस प्रकार, दो जगह रसोई बनाती और अपनी सेवासे पिताजी और पतिदेव दोनोंको प्रसन्न रखती। एक दिन पतिदेवको यह बात मालूम पड़ी। उन्होंने पूछा- 'तुम वहाँ क्यों जाती हो? अब हमें उनसे कुछ लेना-देना नहीं है।' पत्नी अत्यन्त विनयपूर्वक बोली-'देखो! मुझे तो यह सोचकर भी शरम आती है कि श्वसुरजी अपने हाथसे रसोई बनाकर खायें और हम लोग यहाँ घरमें मौज करें। पिताजीको खिलाना तो हमारा धर्म है। उनकी सेवा-देखभाल हम नहीं करेंगे तो और कौन करेगा? आप कृपया मुझे इस सेवाका लाभ लेने दो।' अप पतिदेवने कहा-'ठीक है। यदि तुम्हारी ऐसी सेवा-भावना है, तो मैं पिताजीको बुलाकर घरमें ही ले आता हूँ। उन्हें अकेले अलग रहनेकी क्या जरूरत है? तुम यहीं एक जगह ही रसोई बनाकर उन्हें

खिलाया करो। यह दो जगह रसोई बनानेकी आवश्यकता नहीं है।' नारायण! सेवा नहीं छूटनी चाहिए। सेवासे हृदयमें प्रेम उमड़ता है। प्रेममें कोई वाद-विवाद नहीं। प्रेम केवल सुख-ही-सुख देना चाहता है।

हाँ! यदि पति नितान्त पतित हो, तो धर्मशास्त्रके अनुसार वह सहवास करने योग्य नहीं होता है। परन्तु उसकी सेवा अपनेसे जितनी बने, उतनी अवश्यमेव करनी चाहिए। देखो! हिन्दू-वैदिक-सनातन धर्ममें विवाह भोग-वासनाकी पूर्तिके लिए नहीं होता है। जो उच्छृङ्खल वासना चारों ओर दौड़ने लगती है, उसको नियन्त्रित करनेके लिए विवाह होता है। स्त्रीकी वासना भिन्न-भिन्न पुरुषोंकी ओर जाती है और पुरुषोंकी वासना उनको भिन्न-भिन्न स्त्रियोंकी ओर ले जाती है। उस वासनाका संयम करके एक स्थानपर समेटनेके लिए विवाह-सम्बन्ध होता है। वैदिक-सनातनधर्ममें विवाह भोगके लिएं नहीं; अपितु, संयमके लिये होता है। अतः यदि वैवाहिक जीवनमें कोई ऐसा अवसर आ जाये कि भोगके सम्बन्धमें बाधा बड़े, तो उससे घबड़ाना नहीं चाहिए।

सेवाकी वृत्ति सेवकका कल्याण करनेके लिए होती है। सेवा करनेसे अच्छी आदत बनती है। जीवनमें सहिष्णुता आ जाती है। देखो! यदि आप पतिदेवकी सेवा करती हैं, उनकी सहायता करती हैं, उनका कोई काम आपसे बनता है, तो आप अपने मनमें पक्का समझें कि आपको पतिदेव मन-ही-मन आपको चाहते हैं और आपपर निर्भर हैं। यदि वे देखेंगे कि आप उनसे बेरुख हैं और आप उनसे अलग हो जायेंगी, तो वे आपसे मिलनेका प्रयास करेंगे। आपकी सेवा उनके जीवनका अत्यावश्यक अंग बन गयी है। वे आपको कदापि छोड़ नहीं सकते हैं।

हाँ! यदि गुस्सेमें पतिदेव अनाप-शनाप बोलें, तो आप स्वयं थोड़ा चुप रहिये। घरसे निकल जानेको कहना केवल कहना मात्र है। वस्तु स्थिति नहीं है। क्रोधमें कही बातपर अधिक गौर नहीं करना चाहिए। जीवनकी वास्तविकताको समझना चाहिए। हृदयके प्रेमको पहचानना चाहिये। पति पत्नीपर गुस्सा नहीं करेगा, तो भला किसपर करेगा? पड़ोसीपर करेगा? अपने आत्मीय जनके सामने ही तो हृदय

खुलता है। देखो! यदि आपके पतिदेव निष्ठुर हो जायें, तो आप क्यों निष्ठुर होती हैं? यदि उनके अन्दर किसी हिंसा करनेवाले पशुका आवेश हो जाता है, तो आप क्यों हिंसा करनेवाले पशुके आवेशसे युक्त होती हैं? आप तो शान्त रहिये।

आप स्वयं शान्त-सहिष्णु भाव सम्पन्न होकर सेवामें संलग्न रहें और सुख दें। देखिये! आपकी शान्तिका प्रभाव पड़ेगा और आपके पतिदेव बिलकुल अनुकूल आचरण करनेवाले हो जायेंगे। असलमें, यह विषम-प्रतिकूल परिस्थिति ही आपकी परीक्षाकी घड़ी है।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपदकाल परखिये चारी।।

नारायण! यदि कभी ऐसा कोई प्रसंग हो, तो जैसे पति पत्नीका परित्याग कर सकता है, वैसे पत्नी भी पतिका परित्याग कर सकती है। यह अधिकारका प्रश्न नहीं है। यह चरित्रकी पवित्रताका प्रश्न है। यह मनुष्यकी नैतिकताका प्रश्न है। स्त्री-पुरुष दोनोंके दो-दो हाथ होते हैं। दोनोंके मुँह होता है। दोनोंके दिल-दिमाग होते हैं। जो पति कर सकता है, वह पत्नी भी कर सकती है।

पंचत्वाप्तसु नारीणां पतिऽन्यो विधीयते।

इस श्लोकका दो पक्षमें दो अर्थ होता है। परन्तु, इसमें डरनेकी कोई बात नहीं है। पण्डित लोगोंने, सनातन धर्मी काशीके विद्वानोंने इस श्लोकका अर्थ दूसरा किया है। परन्तु, है उसमें स्पष्ट-

नष्टे मृत्ते प्रभवृते ये च पतिते पतौ।

पण्डितोंने 'पतिते पतौ'में 'आपतौ' समास कर दिया है; क्योंकि, वैसे 'पत्यौ' होता है।

अच्छा! निर्विवाद सही बात तो यह है कि पत्नीको हर हालतमें शान्ति और सहिष्णुता धारण करके पतिकी सेवामें संलग्न रहना चाहिए। अपनी प्रेमपरिपूर्ण सेवासे अपने पतिको आनन्दसे भरपूर करना चाहिए। वैवाहिक जीवनमें सुखी रहनेकी यही एकमात्र कला है। नारायण! सेवा करो; खुश रखो और खुश रहो।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

प्रशासनिक अनौचित्यका समाधान

प्रशासनमें रहकर अनुचित कार्यका विरोध करना पड़ता है। विरोध करनेसे अपना ही नुकसान होता है। क्या इस समस्याका कोई समाधान है?

देखो! प्रशासनके जो संविधान हैं, उनमें तो अनुचित कार्य करनेका आदेश नहीं है। जो संविधान हैं, जो नियम हैं, वे तो मर्यादानुसार ही होते हैं। असलमें, काम करनेके लिए ऊपर-नीचे जो अपने होते हैं, उन लोगोंमें दोष होता है। यदि आपको धर्मसे प्रीति हो, तो आप अपने ऊपर काम करनेवाले अफसरको ठीक-ठीक समझा भी सकते हैं। यदि आपको सदाचारसे प्रीति हो,तो आप अपने नीचे काम करनेवाले व्यक्तिको भी ठीक-ठीक रख सकते हैं। सास-का-सारा दारोमदार तो आपकी स्वयंकी धर्म-सदाचार विषयक प्रीति पर है।

मैंने एक अधिकारीको देखा है। जहाँ मेरी जन्मभूमि है, वहाँपर वह रहते थे। उन्होंने प्रदेशके मुख्यमंत्रीके कहनेपर भी अनुचित कार्य नहीं किया। फलतः उनकी उन्नति रोक दी गयी। जो नीचेके अधिकारी थे, वे उनको कुछ दे-दिलाकर उनसे जब कुछ अनुचित कार्य करवाना चाहते थे, तब भी वह नहीं करते थे। स्पष्ट तौरसे इनकार कर देते थे। यही कारण था कि वह अपने लिए वाहन भी नहीं रख सकते थे। नौकर-रसोईया भी नहीं रखते थे। मैं कभी-कभी उनके यहाँ जाकर रहता था। वे स्वयं अपने हाथसे भोजन बनाकर मुझे खिलाते थे। उनका जीवन अत्यन्त पवित्र-संयमित-नियमित-सदाचारी था। अपने सिद्धान्तकी रक्षाके लिए हर एक कष्टको शान्तिसे सहते थे।

भाई मेरे! आप कष्ट सहकर भी अपने धर्मके अनुसार जीवन व्यतीत कीजिये। यदि कष्ट सहन नहीं कर सकते हों, तो उस पदको त्याग दीजिये। यदि सम्भव हो, तो अपने ऊपरके अधिकारियोंको और नीचेके कर्मचारियोंको भी समझाईये कि 'भाई! ऐसा अनुचित काम हम नहीं करेंगे।' महाराज! हमने तो बड़े-बड़े लोगोंके यहाँ देखा कि वे स्वयं कागजपर हस्ताक्षर ही नहीं करते हैं। नीचेके लोगोंको ही सब हस्ताक्षर करना पड़ता है! इसका कारण यह है कि यदि कोई जाँच

वगैरह हो, तो वे स्वयं अपना बचाव कर सकें और नीचेके कर्मचारी लोग पकड़े जायें। यह हालत है। ऐसी स्थितिमें, जैसा आपका आत्मबल होगा, उसके अनुसार आप आचरण कर सकेंगे। यदि आपका मनोबल-आत्मबल पूर्ण नहीं होगा, तो ऐसी अवस्थामें आप धीरे-धीरे गिरते जायेंगे। और फिर, जो होगा, सो आप जानते ही हैं।

अधोऽधो गांगेयं पदमुगतं स्त्रोतमधुना।
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।।

आप सदाचारको जानते हैं और मर्यादाको पहचानते हैं। जहाँतक हो सके, अपनी ओरसे प्रयास क़रना चाहिए कि हम मर्यादाके अनुसार चलें। देखो! जो आपसे अनुचित कार्य करवाना चाहता है, वह भी पापी है। अपराधी तो वह भी है। चाहे वह ऊपरका अफसर हो अथवा नीचेका कर्मचारी। कृतकारित, अनुमोदित इत्यादि कई प्रकारके कर्म होते हैं और उनमें वह सब पाप पुण्य बाँटता है।

आपने 'रत्नाकर' की कथा सुनी होगी। जब रत्नाकरने ऋषियोंको घेर लिया और कहा कि 'मैं तुम्हारा दण्ड-कमण्डलु सब कुछ छीन लूँगा', तब ऋषियोंने रत्नाकरसे पूछा कि 'तुम यह सब किसलिए छीन रहे हो?' रत्नाकर बोला-'अपने परिवारके भरण-पोषणके लिए।' ऋषियोंने कहा-'अच्छा! एक बात बताओ। इस छीना-झपटीसे तुम्हें जो पाप होगा, उसमें तुम्हारे परिवारके लोग भागीदार होंगे? उस पापका हिस्सा लेंगे?' रत्नाकरने कहा-'ऋषियों! यह तो मैंने कभी पूछा ही नहीं।' ऋषियोंने कहा-'अच्छा! जाओ। पूछकर आओ।' रत्नाकरने कहा-'यदि मैं पूछने जाऊँ और आपलोग भाग जाओ, तो मैं क्या करूँगा?' ऋषियोंने कहा-'तुम हम लोगोंको पेड़से बाँधकर जाओ और पूछकर आओ।' रत्नाकर पूछने गया। घरके सब लोगोंने कहा-'बाबा! यह तुम्हारा धर्म है कि तुम हम लोगोंका पालन-पोषण करो। भरण-पोषण करो। यह हम नहीं जानते हैं कि तुम कहाँसे लाते हो? इसलिए, हम लोग तुम्हारे पापके भागीदार नहीं होंगे।' बस! उसी समय रत्नाकरकी बुद्धि पलट गयी। तुरन्त ऋषियोंके पास दौड़ता-दौड़ता आया। उनको पेड़के बन्धनसे मुक्त

किया और उनके चरणोंपर गिर पड़ा। ऋषियोंने उसपर कृपा की। उसको उल्टा राम नाम मन्त्र दिया, जिससे वह राम-राम कर सके। मरा-मरा जपते-जपते रत्नाकरने आत्मकल्याण प्राप्त किया। यह कथा 'कृतिवास रामायण'में है। यह रामायण बंगलामें है। 'अध्यात्मरामायण'में तो है-

अहं पुरा किरातेषु किरातैः सहवर्धितः।
जन्मात्रं द्विजत्वं मे शूद्राचारव्रतः सदा।।

इस तरहकी कथाएँ आती हैं।

नारायण! अब आप अपने आत्मबलको नाप लीजिये। यदि आप अपने आत्मबलके अनुसार अपने पदपर दृढ़ रहकर धर्म-मर्यादापूर्वक अपना काम कर सकते हों, तो अवश्य रहिये। सम्भव है कि आपके सदाचारके कारण आपकी उन्नति रुक जाये। यह भी सम्भव है कि आपके नीचेके कर्मचारी आपकी शिकायत करें। ऊपर अफसर और नीचे कर्मचारी वर्ग आपका काम करना असम्भव कर दें। आपका पदपर रहना दूभर कर दें। सभी प्रकारकी सम्भावनाएँ हो सकती हैं।

नारायण! यदि आपका आत्मबल विशेष हो, तो आप उस पदको त्याग दीजिये। जब आपकी आत्मा अनुचित कार्य करनेकी स्वीकृति नहीं देती है, तब आप अपने पदको छोड़ क्यों नहीं देते हैं? पदलिप्सासे चिपके क्यों हैं? भगवान्‌पर विश्वास कीजिये। प्रारब्धपर विश्वास कीजिये। प्रकृतिपर विश्वास कीजिये। आपको भरण पोषणकी कमी कभी नहीं होगी। आपको अन्न-वस्त्र हमेशा मिलता रहेगा। यह बात विश्वासपूर्वक धारण करने योग्य है।

जो हठि राखै धर्म को, तेहिं राखै करतार।

नारायण! आप अपने आपको तौल लीजिये कि आप कैसे सोचते हैं? कैसे करते हैं? कैसे चलते हैं? आपकी प्रत्येक प्रशासनिक अनौचित्यकी समस्याका समाधान है-आपका आत्मबल, आपकी कष्ट सहिष्णुता, आपकी समझ! एक बार निर्भय-निर्द्वन्द्व होकर कह दो न कि-

तेरे भावै जो करो, भलो-बुरो संसार।
नारायण! तू बैठिके, अपनो भुवन बुहार।।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

अहंका संघर्ष

माता, बहन, पत्नी–ये सब एक ही पुरुषका भला चाहती हैं। माता पुत्रकी, बहन भाईकी, पत्नी पतिकी भलाई चाहती हैं। जब तीनों एकका ही भला चाहती हैं, तब उनमें परस्पर प्रेम होना चाहिए। लेकिन, उनका 'अहं' संघर्ष उत्पन्न करता है। सारा–का–सारा संघर्ष अहंका है।

एक गाँवके पास एक हनुमानजीकी मूर्ति मिली। गाँवके लोगोंने मिलकर खड़ी कर दी। एक महात्मा आये। वे गाँवके लोगोंसे बोले–'तुम सब बड़े पापी हो। हनुमानजीको धूपमें खड़ा कर रखा है।' महात्माकी प्रेरणासे लोगोंने वहाँ छप्पर डाल दिया। वे महात्मा चले गये। थोड़े दिनोंमें दूसरे महात्मा आये। वे बहुत बिगड़े और बोले–'तुम सब बड़े मूर्ख हो। यदि कभी छप्परमें आग लग जायेगी, तो अनर्थ हो जायेगा। यह छप्पर यहाँसे हटाओ।' महात्माकी आज्ञासे लोगोंने वहाँसे छप्पर हटा दिया। देखो! हनुमानजीसे दोनों महात्माओंका प्रेम था। किन्तु, दोनोंकी बुद्धिमें भेद हुआ। यही बुद्धि–भेद राग–द्वेष उत्पन्न करता है। यही बुद्धि–भेद दुःखदायी है।

प्रायः हम लोग अपने जीवनमें भेद ही प्रकट करते हैं। यह भेद 'मेरा–तेरा' बनाता है। वस्तुतः हम अपने दुःखकी सृष्टि स्वयमेव करते हैं। ईश्वरके आनन्दमय हाथोंसे दुःखका निर्माण नहीं होता है। अपना अहं ही टकराता है। अपना अहं ही संघर्षका हेतु है। अहंमें निरहं होते ही सारा–का–सारा संघर्ष समाप्त हो जाता है।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

हमारे मनके अनुसार क्यों नहीं किया?

आजकल तो सबसे बड़ी चीज यह है कि हमारे मनके अनुसार सब बात होनी चाहिए। लोग कहते हैं कि 'इसने किया, वह तो ठीक किया; लेकिन, हमारे मनके अनुसार क्यों नहीं किया?'

लगभग दो हजार वर्ष पुराने एक ग्रन्थमें '**श्वश्रु सुभग न्याय**'का उल्लेख मिलता है। एक संन्यासी किसीके घरमें रोटी माँगने गया। द्वारपर पहुँचकर उसने पुकारा-'नारायण हरिः।' भीतरसे बहूजी निकलीं। वह हाथ जोड़कर बोलीं-'महाराज! अभी घरमें रोटी तैयार नहीं है।' बाबाजी वहाँसे चल पड़े। जब एक-दो मील आगे बढ़ गये, तब सासजी मिल गयीं। उन्होंने पूछा-'महाराज! आप हमारे घर रोटी लेने नहीं गये?' बाबाजीने कहा-'तुम्हारे घरमें गया तो था।' सासजीने पूछा-'तब क्या हुआ?' बाबाजी बोले-'बहूने हाथ जोड़कर बताया कि अभी घरमें रोटी तैयार नहीं है।' सासजी बोलीं-'महाराज! बहूको क्या हक था कि वह आपसे यह कहे कि अभी घरमें रोटी तैयार नहीं है। चलो महाराज! आप फिर चलो!' अब सासजीने बाबाजीका हाथ पकड़ा और फिरसे एक-दो मीलतक उनको घेरकर ले आयीं। घरमें पहुँचकर बहूको बुलाकर ऊँचे स्वरसे डाँटा-

फटकारा-'बहू! तुमको क्या हक था कि तुमने महाराजको कह दिया कि अभी घरमें रोटी तैयार नहीं है?' जब डाँट-डपट लिया, तब सासजी घरमें गयीं। अब बांबाजी खड़े-खड़े देख रहे थे कि यह रोटी लाकर देगी। लेकिन, हुआ यह कि सासजी भी घरके भीतर घूम-फिरकर वापिस बाहर आयीं और बोलीं-'महाराज! अभी घरमें रोटी तैयार नहीं है।' बाबाजी वहाँसे चल पड़े।

अब ल्यो! यह क्या बात हुई। भला बताओ! दोनोंकी बातमें क्या अन्तर है? क्या सासजी और बहूजीने एक ही बात नहीं कही? परन्तु, सासजीका कहना है कि बहूको यह बात कहनेका हक नहीं है। हम देखते हैं कि आज लोगोंकी लड़ाई इस बातके लिए होती है कि 'इस व्यक्तिने भले ही ठीक-ठीक काम किया है; लेकिन, हमारे ही मनके अनुसार क्यों नहीं किया है?' आज सारी-की-सारी लड़ाई तो यही है कि लोग अपने-अपने मनको ही ले-लेकर बैठे हुए हैं कि 'बस! हमारे ही मनके अनुसार क्यों नहीं हुआ?'

यदि सचमुचमें लड़ाईका अन्त करना चाहते हो, तो उन्मुक्त हृदयसे कहा-'प्यारे! जो थारी राय, सो म्हारी राय।' सामनेवाले व्यक्तिकी हाँ में हाँ मिलाकर देखो तो सही।

रज्जब रोष न कीजिये, कोई कहे क्यों जी?
हँसकर उत्तर दीजिये, हाँ बाबा यों ही!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

सारे दुःखोंका मूल-'मैं-मेरा'

एक मनुष्यके पास एक घोड़ा था। घोड़ा भूखा हो, तो दुःख। बिगड़ जाये, तो दुःख। बीमार पड़े, तो दुःख। एक दिन उसने घोड़ेको बेच दिया। अब वह घोड़ा दूसरेका हो गया। अब वह कभी पूछता ही नहीं कि घोड़ा भूखा है या प्यासा है? बीमार है या अच्छा है? मर गया या जीवित है! जानते हो क्यों? क्योंकि, अब घोड़ा उसका नहीं रहा।

एक भूमि थी। मेरे पितामह उसे अपनी समझते थे। मेरे पिता भी उसे अपनी समझते थे। मैं भी उसे अपनी समझता था। यदि उस भूमिमें किसीका पशु चरने आ जाये, तो हमें दुःख होता था। यदि उसमें अच्छी फसल हो जाये, तो प्रसन्नता होती थी। एक बार सरकारी जाँच-पड़ताल हुई। हमें पता लगा कि वह भूमि हमारी है ही नहीं। मेरे पितामह, पिता और मैं भी झूठे ही उसे अपनी मानते रहे थे। हमारे पड़ोसीको अपनी भूमि भूल गयी थी। उसे पता नहीं था। अतः उसने अपनी भूमिको छोड़ रखा था और हमने उसे अपनी मानकर उसपर अपना अधिकार कर रखा था। जब कागजोंसे सिद्ध हो गया कि वह भूमि हमारी नहीं है, तब उसके प्रति अहंता-ममता चली गयी। नारायण! यह शरीर और शरीरके सम्बन्धी भूलसे अपने माने हुए हैं। अविवेकसे, अज्ञानसे, मोहवश अपने माने हुए हैं। जब मालूम हो जाता है कि ये अपने नहीं है, तब अपनेको इनका क्या दुःख है? कुछ भी तो नहीं। निरहं-निर्मम होते ही समस्त दुःखोंसे छुटकारा मिल जाता है।

जबतक मैं संन्यासी नहीं हुआ था, तबतक घर-परिवारमें पिता-पितामह आदि किसी सम्बन्धीके मरनेपर सूतक लगता था। हम लोग किसीको छूटे नहीं थे। दाह-कर्म करनेके बाद अलग तख्तेपर कम्बल बिछाकर सोते-बैठते थे। घरका भी कोई दूसरा आदमी दाह-कर्म करनेवालेको छूता नहीं था। अब संन्यासी हो गया, तो कोई पैदा हो या कोई मरे, न तो जन्मनेका सूतक लगता है और न ही मरनेका पातक लगता है। हम भी वही हैं और वे जन्मने-मरनेवाले लोग भी उसी कुलके हैं। यह सूतक-पातक कहाँसे आया था और कहाँ गया? जब संन्यासी हुए, तब सम्बन्ध छूट गया। जैसे रजिस्ट्रीसे विवाह हुआ और न्यायालयसे विवाह-विच्छेद हो गया। इसमें दुःखकी निवृत्ति हो जाती है। संसारके जितने भी दुःख हैं, वे 'मैं' और 'मेरा' इस मान्यतामें-से निकलते हैं।

मैं संन्यासी होनेसे पहले समझता था-'यदि मैं संन्यासी हो जाऊँगा, तो अमुक-अमुक जो मेरे आश्रित हैं, वे लोग दुःखी हो जायेंगे।' लेकिन, मजेकी बात यह है कि जबतक मैं समझता था कि अमुक-अमुकके पालन-पोषणका दायित्व मुझपर है तबतक सब लोग चुप-चाप बैठे थे। जिस दिन मैंने अपना दायित्व छोड़ दिया, उस दिन बहुत लोगोंकी दृष्टि इस बात पर गयी कि 'इनका पालन-पोषण हमारा कर्त्तव्य है।' जबतक मैं अपना दायित्व लिये बैठा था, तबतक मुझे दो-दो, पाँच-पाँच रुपये उनके पालन-पोषणके लिए लाने पड़ते थे। जिस समय मैंने जिम्मेवारी छोड़ दी, उस समय मेरे गृहस्थाश्रमके जो पचासों गाँवोंमें शिष्य हैं, उनको लगा-'गुरुजी तो चले गये। अब उनकी पत्नी-बच्चोंका कौन ध्यान रखेगा? इनकी देख-रेख करना हमारा धर्म है। अब इनकी सार-सँभार रखना हमारी जिम्मेदारी है।' नारायण! जो समझते हैं कि सब कुछ हम-ही-हम करते हैं, उनकी समझ ठीक नहीं है। जब एक व्यक्ति अपना दायित्व छोड़ देता है तब सम्पूर्ण समष्टि वह दायित्व ले लेती है। वस्तुतः सम्बन्ध ही लोगोंको सुखसे वंचित किये हुए है। सम्बन्धमें बन्धन है। बन्धन ही दुःखका हेतु

है। *'मानि-मानि बन्धनमें आयो।'* 'मैं-मेरा'की मान्यतासे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर बन्धन-दुःखकी निवृत्ति हो जाती है। अतः **'सम्बन्धे सावधानता।'**

वाराणसीमें मणिकर्णिकाका घाटपर चौबीस घण्टोंमें-से ऐसा कोई समय नहीं होता था, जब वहाँ मुर्दा न जल रहा हो। हम ऐसे स्थानपर बैठते थे, जहाँसे चिताएँ जलती हुई दिखायी देती थीं। हमको कभी दुःख नहीं होता था। लेकिन, जिस दिन हमें दिखायी दे कि इस मुर्देके साथ हमारे परिचित मित्र-परिवारके लोग आये हैं, उस दिन हम पूछते-'कौन है?' जब पता लगता कि हमारे अमुक सम्बन्धी हैं, तब हमें दुःख होता और हम कहते-'हाय-हाय! ये तो बहुत भले आदमी थे। बेचारे मर गये।'

घड़ा कच्चा हो या पक्का, वह काला हो या लाल, उसमें गंगाजल भरा हो या शराब, वह तुम नहीं हो और वह तुम्हारा नहीं है। उस घड़ेको हटाने, फोड़ने या बदलनेकी न तुम्हें कोई आवश्यकता है और न तुम्हारा कोई अधिकार है। तुम उसके केवल साधारण दर्शक हो। जब तुम घड़ेको 'मैं-मेरा' मानोगे, तब दुःखी हो जाओगे। जब तुम उसे 'मैं-मेरा' नहीं मानोगे, तब सुखी हो जाओगे।

जब पैदल या मोटरसे चलते हैं, तब मार्गमें बहुत-सी भूमि, मकान, मनुष्य पड़ते हैं; किन्तु, हम उनको 'मैं-मेरा' नहीं समझते हैं। अतः वह भूमि किसकी है? इससे हमें कोई मतलब नहीं। उन मकानोंमें कौन रहते हैं? इससे हमें कोई मतलब नहीं है। वे मनुष्य कहाँ जा रहे हैं? क्या कर रहे हैं, इससे हमको कोई कष्ट नहीं होता है। सीताराम! यह संसार भी मार्गमें मिलनेवाले खेत-मकानके समान है। इसमें 'मैं-मेरा' कुछ नहीं है। जितना दुःख है, वह सब 'मैं-मेरा' का है।

नारायण! प्रकृति कभी किसीको दुःख नहीं देती है। इसमें जो 'मैं-मेरा'-पनका सम्बन्ध है, वह दुःख देता है। ईश्वर कभी किसीको दुःख नहीं देता है। ईश्वर परमानन्दस्वरूप है। ईश्वरके द्वारा दुःखदायी कर्म हो ही नहीं सकते हैं। ईश्वर-सृष्टिमें दुःख नहीं है। दुःख जीवकी सृष्टि

है। अविवेकके कारण जीव अपने लिए दुःख बना लेता है। दुःख अपनी ही नासमझीसे बना है। जो दुःखी है, वह अज्ञानी भी है। जो अज्ञानी है, वह दुःखी है और वह मृत्युके भयसे भी ग्रस्त है। जो अपनेको सच्चिदानन्द स्वरूप जानता है, उसे मृत्युका भय, अज्ञानका भय और दुःख नहीं हो सकता है।

परमानन्द स्वरूप तू नहिं तोमे दुःख लेश।

अतः अपने असंग अद्वय सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूपको जानो। अपने अपरिच्छिन्न ब्रह्म स्वरूपको जाननेके लिये द्रष्टा-दृश्यका विवेक करो। यह विवेक अज्ञानका-नासमझीका शत्रु है। यह द्रष्टा-दृश्य विवेक आपके अहंकार और ममकारको मिटा देगा। निरहं-निर्मम होते ही आपका अज्ञानजन्य बन्धन कट जायेगा। निवृत्त होते ही आपके समस्त दुःख दूर हो जायेंगे और आपको सुख-शान्ति-आनन्दका अनुभव होगा। नारायण! अपने आपको परिच्छिन्न व्यक्तित्वके घेरेसे बाहर निकालो। सारे-के-सारे दुःखोंका मूल है-'मैं और मेरा।' अपने भीतर बैठी हुई अहंता-ममताको मिटा देना ही अपने समस्त दुःखोंको मिटा देनेवाली रामबाण औषधि है।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

यह माँसका टुकड़ा

हम फँसे कहाँ है? आप यह देखो! अपनेको एक फन्दा लग गया। एक बहुत ही गन्दा फन्दा। यह माँसका टुकड़ा। आप इस माँसके टुकड़ेको 'मैं' समझते हो। आपको कौवे खायेंगे। आपको चीलें खायेंगी। आपको गिद्ध खायेंगे। आपको कुत्ते खायेंगे। आप माँसके टुकड़ेको 'मैं' समझते हो और अपनेको बुद्धिमान् मानते हो?

आप स्वयं मानते हैं कि 'मैं पापी हूँ। मैं पुण्यात्मा हूँ।' अच्छा! यदि आप कहते हैं कि 'नहीं-नहीं! हम अपने आपको ऐसा कुछ नहीं मानते हैं, 'तो हम आपसे सत्य कहते हैं कि जबतक आपके अन्दर जोर है, तबतक आप कहोगे कि हम अपने आपको पापी-पुण्यात्मा नहीं मानते हैं। जब बुखार आवेगा, जब 'टेम्परेचर' (Temprature) 105 डिग्री होगा; और, जब बेचैन होकर हाय-हाय करने लगोगे, तब आप झटपट मान बैठोगे कि 'हाँ! मैं पापी हूँ।' जब कोई अच्छा काम करोगे, तब तुरन्त मान बैठोगे कि 'हाँ! मैं पुण्यात्मा हूँ!' बस! आप फँस गये।

देखो! 'मैं बड़ा धर्मी हूँ, मैं बड़ा ज्ञानी हूँ, मैं बड़ा प्रेमी हूँ'-यह सब झूठा ही है। यह सब देहाभिमान है। आप इस झूठे देहाभिमानके पाशमें बँधकर फँस गये। आहा! देखो! प्रेमी मरे। ज्ञानी मरे। धर्मी मरे। स्वर्ग मरा। नरक मरा। देवता मरा। दानव मरा। जब छोटा हो गया, तब उसके ऊपर कुल्हाड़ी चलेगी। आप तो देहाभिमानके जालमें फँस गये हैं। हाँ! जब आपपर कुल्हाड़ी चलेगी। अब आपको काल शिकारी पकड़ लेगा। अब आप देशके पिंजड़ेमें बन्द हो जाओगे। आहा! जब

आपने अपनेको देहाभिमानके गन्दे फन्देमें डाल दिया, तब कोई आपको मारकर खा जायेगा। अरे बाबा! अब तो समझो! आप बोधस्वरूप हैं। आत्मज्ञानकी तलवारसे अपने देहाभिमानके पाशको काट डालो। अपनेको बोधस्वरूप अनुभव करो और सुखी होवो।

अच्छा! भला बताओ! यह ज्ञानकी तलवार क्या है? देखो! यह ज्ञान, यह ज्ञान-ऐसा नहीं। यह-यह-यह मरनेवाले हैं। वह-वह-वह मरनेवाले हैं। तुम-तुम-तुम बदलनेवाले हैं। और ज्ञान? ज्ञान नहीं बदलता है। मौसम्बी बदलती है हो! सन्तरा बदलता है। अमरूद बदलता है। आम बदलता है। आँख बदलती है। कान बदलता है। मुँह बदलता है। दृश्य-जगत्में सब कुछ बदलता है। ज्ञान नहीं बदलता है। यह जो लोग मानते हैं ना कि ज्ञानका नाश होता है, वे ज्ञानके विषयके नाशको ज्ञानपर आरोपित करते हैं। वे ज्ञानके विषयके नाशको ज्ञानका नाश मानते हैं। '**घटो जातः**'-घड़ा पैदा हुआ। '**घटो नष्टः**'-घड़ा नष्ट हुआ। और ज्ञान? ज्ञानका नाश नहीं होता है। जिसने घड़ेको पैदा होते हुए देखा था, वही घड़ेको फूटता हुआ भी देखता है। ज्ञान तो ज्ञान है। घड़ा फूटता है। आँख नहीं फूटती। आँख फूटती है। बुद्धि नहीं फूटती। बुद्धि फूटती है। आत्मा नहीं फूटती। जब आत्मा अपनेको किसी देशमें, कालमें, वस्तुमें बद्ध मानता है, तब देश-काल-वस्तुमें आबद्ध आत्मा फूटता है। परिच्छिन्न आत्मा कटता-पिटता-मरता है। अपरिच्छिन्न आत्मा असंग अद्वय सच्चिदानन्दघन ब्रह्मस्वरूप है। अपनी अपरिच्छिन्नताको ब्रह्मताको पूर्णताको जानो-समझो अनुभव करो।

ओ साक्षी बाबा! सुनो! तुम साक्षी हो और बाकी सब कर्त्ता-भोक्ता है? तुमको कर्त्ता-भोक्ता बनना पड़ेगा। तुम अकर्त्ता-अभोक्ता रह नहीं सकते। ओ द्रष्टा बाबा! सुनो! तुम द्रष्टा हो और बाकी सब पापी-पुण्यात्मा हैं? तुमको पापी-पुण्यात्मा बनना पड़ेगा। तुम असंग द्रष्टा रह नहीं सकते। सबके लिए जो कानून लागू है, वही तुमपर भी लागू होगा। जबतक देहकी उपाधिसे, कर्मकी उपाधिसे आबद्ध रहोगे, तबतक अपने असंग साक्षी द्रष्टा स्वरूपकी अनुभूति नहीं कर सकोगे। जब

देहकी उपाधिका, कर्मकी उपाधिका, भोगकी उपाधिका बाध करोगे, तब स्वयंको विशुद्ध ज्ञान-स्वरूप अनुभव करोगे। उपाधि-अध्यारोपका अपवाद करनेपर '**बोधोऽहं**'की अनुभूति होती है।

देखो! ईश्वरको जाननेवाली होती है-बुद्धि। जीवको जाननेवाली होती है-बुद्धि। जगत् को जाननेवाली होती है-बुद्धि। वह बुद्धि अहं-अहं-अहं करके इस देहमें फुरती रहती है। जहाँ अहं भाव मिटा, वहाँ '**विशुद्ध-बोधोऽहं**' अनुभव हुआ। आभासमें जो अहं है, वह मिटना जरूरी है। आभासको भले रहने दो। हाँ! हमने तो कह दिया कि कर्त्ता-भोक्ताका जन्म-मरण होता है, तो होने दो। उसको नरक-स्वर्गमें जाने दो। देहको मरने दो-जीने दो। यह समझो कि **कोऽहम्?** मैं कौन हूँ? मैं आभास नहीं हूँ। मैं चिदाभास नहीं हूँ। मैं चित् स्वरूप हूँ। मैं अद्वितीय चेतन साक्षी हूँ। आभासमें जो अहं भाव है, वह झूठा है। आभासको रहने दो। आभासमें अहं भावको मिटाना आवश्यक है। चिदाभासमें अहं भावका बाध होना ही चित् स्वरूप आत्माका बोध होना है।

आरभ्यते जीवजगत्परात्मविचारभेदेन मतं समस्तम्।
इदं त्रयं यावदहं मतिभ्यां सर्वोत्तमाऽहं मतिशून्यनिष्ठा।।

अहं मति शून्य होना ही सर्वोत्तम निष्ठा है। अहं मति है ही नहीं। देखो! उस निष्ठाका अर्थ समाधि नहीं है। आँख बन्द करना नहीं है।

आप यह देखो कि आप फँसे कहाँ हो? नारायण! आप यह माँसका टुकड़ा नहीं हो। इस माँसके टुकड़ेको 'मैं' माननेसे एक बहुत गन्दा फन्दा लग गया। आप देहाभिमानके पाशमें बँध गये। आप झूठे देहाभिमानके जालमें फँस गये। आत्मज्ञानसे अपने इस परिच्छिन्न देहाबद्ध 'मैं' को मुक्त करो। स्वयंको अपरिच्छिन्न अद्वितीय पूर्ण परब्रह्म-परमात्मस्वरूप जानो-समझो-अनुभव करो और सुखी रहो।

देहाभिमानपाशेन चिरं बद्धोऽसि पुत्रक।
बोधोऽहं ज्ञानखड्गेन तन्निष्कृत्त्य सुखी भव।।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

अपनी दृष्टि बदलो

मुम्बईकी बात है। वर्षाके दिन थे। स्वामीश्री प्रेमपुरीजी और मैं मोटरसे कहीं जा रहे ते। सड़कपर कीचड़ जमा हो गया था। ड्राइवर बहुत सँभालकर धीरे-धीरे मोटर चला रहा था। इतनेमें पीछेसे बड़ी तेजीसे एक टैक्सी आयी और सरसराती हुई हमारी मोटरको पार करते हुए आगे निकल गयी। सड़कपर कीचड़से सना जो पानी था, वह हमारी मोटरके भीतर आ गया और स्वामी प्रेमपुरीजीके मुँहमें भी चला गया। स्वामीजीके मुँहमें दाँत न होने के कारण उनका मुँह थोड़ा खुला रहता था। हम लोगोंके कपड़े भी कीचड़से लथपथ हो गये। अब क्या कहना? हमारा ड्राइवर तो एकदम ही आगबबूला हो गया। वह तो जिद्दमें आ गया कि 'मैं टैक्सीवालेको मजा चखाकर ही रहूँगा।' अब स्वामीजी बोले- 'अरे भाई! नाराज क्यों होते हो? हमने भगवान्‌का चरणामृत तो बहुत बार लिया था; लेकिन, मोटरका चरणामृत तो आज पहली ही बार लिया है। क्या अद्भुत है कि मोटर भगवान्‌का चरणामृत स्वयमेव ही हमारे मुखमें पड़ गया। आहा! देखो तो सही! कपड़ोंकी दशा। कीचड़की क्या निराली छटा है? भगवान्‌के सूकरावतारका स्मरण हो रहा है।' स्वामी श्रीप्रेमपुरीजीकी यह बात सुनकर मुझे हँसी आ गयी। ड्राइवर भी हँसने लगा। उसको जो सनक सवार हो गयी थी कि 'मैं टैक्सीवालेको मजा चखाकर ही रहूँगा', वह भी अपने आप उतर गयी।

नारायण! युक्तिसे भी दुःखसे मुक्ति मिलती है। अकलसे भी दुःख दूर होता है। महात्माकी अकल तृणसे ब्रह्म पर्यन्त पहुँचती है। महात्माका संग करनेसे बुद्धिमें निर्मल विवेक-प्रकाशका उदय होता है। महापुरुषका सान्निध्य बुद्धिको सूक्ष्मातिसूक्ष्म करता है। बड़े-बुजुर्गोंकी छत्रछाया ऐसी अनेकानेक युक्तियाँ प्रदान करती हैं, जिनसे हम दुःखको सुख बना सकते हैं। बड़ी-से-बड़ी मुसीबतको हँसकर टाल करते हैं। अतः महापुरुषोंका सत्संग प्राप्त करके अपनी दृष्टिको बदलो और दुःखसे बचो।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत। सुखी भव। सुखं चर।

राऽऽऽऽ! म्रऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

मच्छर काट गया है

देखो! एक बात सुनाते हैं। यह बात साधुके करने लायक तो नहीं है। हाँ! अच्छा चलो! सुना ही देते हैं। एक दिन हमारे पास पति-पत्नी आये। पत्नीकी गर्दनपर एक पट्टी लगी हुई थी। आप लोग पट्टी तो समझ गये न? वही जो चोट लगने पर लगाते हैं। अच्छा! जब दोनों पति-पत्नी प्रणाम करके बैठे, तब हमने पत्नीसे पूछा-'यह तुम्हारी गर्दन पर क्या हो गया है?' पत्नीने मुस्कराकर अपने पतिकी ओर तिरछी नजरसे देखा और बोली कि 'मच्छर काट गया है।' अब आप लोग समझ ही गये होंगे कि 'मच्छर' कौन था? है ना?

देखो! हमारे जीवनमें जितना भी दुःख आता है, वह सारा-का-सारा हमारे प्रियतम पति-परमेश्वरका दिया हुआ है। उसीने धीरेसे चपत लगाया है। उसीने सोते हुए को जगाया है। उसीने दाँत काटा है। उसीने चिकोटी काटी है। यह हाथ उसीका है। जरा-सा भी ध्यान करके परमप्रेमास्पद परमात्माकी ओर चला जाये न, तो दुःखका लेशमात्र भी नहीं रहेगा। यदि सचमुचमें दुःखसे बचना चाहते हो, तो अपने हृदयमें विराजमान प्रभुसे अपना सम्बन्ध जोड़ो। अपने भाव-सम्बन्धानुसार प्रभुसे मिलो-जुलो, हँसो-बोले, खेलो-खाओ, नाचो-कूदो। जीवनका खेल-मेल देखो। आनन्दमें रहो। दुःखको भी भगवत्कृपा प्रसादके रूपमें स्वीकार करो। अपने परमप्रेमास्पद-हृदयेश्वरसे सच्ची प्रार्थना करो-

मैं मर जाऊँ, तूँ प्रभु जीवै।
तूँ-ही-तूँ, प्रभु केवल तूँ।।

अब भला बताओ! क्या दुःख रहेगा? नारायण! दुःखका नामोनिशान भी नहीं रहेगा।

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

सहज-जीवन व्यतीत करो

मनुष्यको अपना सहज-जीवन व्यतीत करना चाहिए। इसमें बनावट नहीं करनी चाहिए। सबेरे उठ गये। स्नान कर लिया। भगवान्‌का नाम ले लिया। अपने घरके काम कर लिए। जो लोग दिन भर हाथमें माला रखते हैं, उनका जप ठीक नहीं होता है। उस जपका प्रभाव नहीं पड़ता है। हमें कई लोग बताते हैं कि हाथमें माला तो रखते हैं; लेकिन, कई बार हाथसे छूट-छूटकर गिर जाती है। नारायण! अतिशय नहीं करना चाहिए। प्रातः उठकर स्नानादि करके घण्टे-दो-घण्टे खूब प्रेमसे भगवान्‌का भजन कर लेना चाहिए। सत्संग-स्वाध्यायादि, जो मोक्षके साधन हैं, उनको भी करना चाहिए। व्यवहार और परमार्थ-दोनों ही सन्तुलित होना चाहिए। जब आदमी एकमें ही अति कर देता है, तब उससे विरोधी भाव पैदा हो जाता है। अति फिर विरोध ही पैदा कर देता है। '**अति सर्वत्र वर्जयेत्।**' अरे बाबा! जैसे सब पैदा होते हैं; साठ-सौ-वर्ष जिन्दा रहते हैं; अपना-अपना काम करते हैं; वैसे अपना सहज-जीवन व्यतीत करो। राम-राम कहते रहो। अपना काम करते रहो। अपने आपमें मस्त रहो। सहज रहो!

राऽऽऽऽ! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽ!!!!

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज द्वारा विरचित एवं सम्प्रति उपलब्ध साहित्य

पुस्तक	मूल्य
वेदान्त	
मुण्डक सुधा	110.00
माण्डूक्य प्रवचन (आगम प्रकरण) भाग-1	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (वैतथ्य प्रकरण) भाग-2	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (अद्वैत प्रकरण) भाग-3	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (अलात शान्ति) भाग-4	100.00
ईशावास्य प्रवचन	20.00
ईशानुभूति (ईशावास्योपनिषद् के आधार पर)	40.00
केनोपनिषद्	70.00
कठोपनिषद् (दो भागोंमें)	250.00
बृहदारण्यकोपनिषद्	60.00
श्वेताश्वतरोपनिषद्	150.00
छान्दोग्य-बृहदारण्यक एक दृष्टिमें	10.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 1	100.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 2	75.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 3	60.00
दृग दृश्य विवेक	100.00
विवेक कीजिये (विवेक चूड़ामणि प्रवचन)	100.00
अपरोक्षानुभूति प्रवचन	80.00
वेदान्त बोध	110.00
साधना और ब्रह्मानुभूति	70.00
महाराजश्रीकी डायरीसे	6.00
आनन्द सूत्र	15.00
आनन्दानुभव	20.00
जीवन्मुक्ति विवेक	75.00
अष्टावक्रगीता	25.00
अष्टावक्रगीता प्रवचन	80.00
मिथ्यात्व ज्ञान	20.00
ध्यान और ज्ञान	90.00

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-रस-रत्नाकर (सम्पूर्ण गीता)	200.00
सांख्ययोग (गीता अध्याय-2)	200.00
कर्मयोग (गीता अध्याय-3)	60.00
ध्यानयोग (गीता अध्याय-6)	150.00
ज्ञान-विज्ञान-योग (गीता अध्याय-7)	130.00
अक्षर ब्रह्मयोग (गीता अध्याय-8)	50.00
राजविद्या राजगुह्ययोग (गीता अध्याय-9)	90.00
विभूतियोग (गीता अध्याय-10)	175.00
भक्ति योग (गीता अध्याय-12)	90.00
ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना (गीता अध्याय-13)	120.00
पुरुषोत्तमयोग (गीता अध्याय-15)	120.00
दैवी-सम्पदयोग (गीता अध्याय-16)	50.00
दैनिक जीवनमें गीता	60.00
योगः कर्मसु कौशलम्	20.00
मामेकं शरणं व्रज	20.00
गीतामें भक्तिज्ञान समन्वय	30.00
गीतामें मानवधर्म	25.00
वासुदेवः सर्वम्	10.00
मया ततमिदं सर्वं (मेरा सब ताना-बाना)	25.00
गीता दर्शन (तीन भागोंमें)	600.00

श्रीमद्भागवत

भागवत दर्शन (दो भागोंमें)	600.00
ईशानुकथा (नवम स्कन्ध)	30.00
भागवत - दशम स्कन्ध	150.00
मुक्ति स्कन्ध (एकादश स्कन्ध) (दो भागोंमें)	270.00
रास पंचाध्यायी	150.00
श्रीकृष्णलीला रहस्य	45.00
भागवतामृत	70.00
भागवत व्यंजन	50.00
भागवत सर्वस्व	25.00
गोपीगीत	100.00
वेणुगीत	40.00
युगलगीत	50.00
प्रणयगीत	60.00

गोपियोंके पाँच प्रेमगीत	20.00
उद्धवगीत	25.00
कपिलोपदेश	60.00
ब्रह्म-स्तुति	85.00
हंसगीता (हंसोपाख्यान)	15.00
सद्गुरुसे क्या सीखें?	15.00
उनकी कृपा	20.00
ऊखल बन्धन लीला	50.00
सत्संग महिमा	20.00
प्रह्लाद चरित	60.00
उद्धव व्रजगमन	180.00
भागवत विमर्श (दो भागोंमें)	45.00
मानव जीवन और भागवत धर्म	100.00
गर्भ स्तुति	60.00
वसुदेव देवकी स्तुति	20.00
भागवत विचार दोहन	30.00
भिक्षुगीत	35.00
मैं ही मैं (चतु:श्लोकी भागवत)	30.00
सुदामा चरित	10.00

रामायण

श्रीरामचरितमानस (तीन भागोंमें)	1000.00
अध्यात्म रामायण	250.00
श्रीमद्वाल्मोकि रामायणामृत	100.00
मानस दर्शन	40.00
सुन्दरकाण्ड (वाल्मीकि रामा.)	30.00
श्रीमद्वाल्मीकि रामायण	300.00

भक्ति एवं साधना

विष्णु पुराण	.00
भक्ति एवं लीला	10.00
नाम महिमा	25.00
भगवन्नाम	10.00
शरण	10.00
प्रार्थना	10.00
नारद भक्ति दर्शन	100.00
भक्ति सर्वस्व	75.00
भक्तिदर्शनामृत	50.00
भक्तिका चमत्कार	
अवतार रहस्य	20.00
माधुर्य कादम्बिनी	30.00
शिव संकल्प सूक्त	50.00
कृष्ण-कृष्णके उच्चारणसे कृष्ण प्राप्ति	10.00
मोहनकी मोहनी	20.00
ध्यानके समय	20.00
हनुमत्स्तोत्र	30.00
सत्संग सुधा	20.00
प्रार्थना षट्पदी	40.00
साधन विचार	.00
मंत्र विज्ञान	30.00
योगदर्शन	100.00
भगवान्‌के पाँच अवतार	50.00
विष्णु सहस्रनाम	.00
भक्त-चरित	15.00
भक्ति : विशेषताएँ	10.00
आदित्य हृदय	15.00
श्रीअखण्डानन्द स्तव:	6.00
ब्रह्ममूर्ति श्रीउड़िया बाबा	30.00
महाराजश्री-एक परिचय	25.00
सबके प्रिय सबके हितकारी	25.00
प्रेरक-प्रसंग	20.00
श्रीपूर्णानन्द तीर्थ स्तव: (चित्रावली)	100.00
श्रीगुरुदेव प्रात: स्मरणम्	5.00
भिक्षु स्वामी शंकरानन्द	20.00
पावन प्रसंग	150.00

विविध

आनन्दवाणी	80.00
आनन्द उल्लास	60.00
आनन्द बिन्दु	.00
आनन्दवचनामृत	10.00
आनन्द वार्ता	10.00

आनन्द पत्रावली	60.00
आनन्द रस रत्नाकर	200.00
आनन्द प्रश्नोत्तरी	30.00
आनन्द मंजूषा	120.00
आनन्द जयन्ती	10.00
आनन्द रत्न	60.00
आनन्द-ही-आनन्द	25.00
आनन्द निर्झर	35.00
व्यवहारशुद्धि	50.00
हृदयाकाशके हीरे	50.00
आप सबसे श्रेष्ठ हैं	30.00
गृहस्थाश्रम धन्य है	30.00
जीवन-एक यात्रा	55.00
अमृत वाणी	25.00
व्यवहार और परमार्थ	
ईश्वर दर्शन	20.00
आपका व्यवहार	20.00
अमृत महोत्सव	20.00
आपकी पसन्द	25.00
भारतीय संस्कृति	20.00
सत्यकी खोजमें	25.00
जिज्ञासा और समाधान	30.00
स्पन्द तत्त्व	15.00
प्रकाश स्तम्भ (दैनिक कैलेण्डर : म.श्रीके चित्र-उपदेश)	60.00
गुरु पूर्णिमा	10.00
सुखी रहो और सुखी रखो	10.00
सद्गुरु प्रसाद	40.00
आपके लिए	20.00
जीवनमें साधना	25.00
संन्यास महोत्सव	5.00
चारु चिन्तन	60.00

● अंग्रेजी (English) साहित्य ●

Anand Sutra (Teachings on bliss)	30.00
Bhagwatamrit	110.00
Bhagwat Sarvasva	60.00
Unki Kripa (His Grace)	25.00
Ishwar Darshan (God Realization)	15.00
Attainment of Krishna by Utterance of Krishna-Krishna	15.00
Anand Ullas	70.00
Indian Culture	60.00
Prakash Stambh (Light House) (Cidr)	50.00
Sri Poornananda Teertha Stava	25.00
Prerak Prasang	10.00

● गुजराती साहित्य ●

धन्य छे गृहस्थाश्रम	20.00
जीवन एक यात्रा	12.00
सद्गुरु प्रसाद	15.00
ईश्वर दर्शन	15.00
भारतीय संस्कृति	14.00
सद्गुरु पासेथी शुं शीखवुं	10.00
वेणुगीत	20.00
हंस गीता	10.00
उद्धवगीत	20.00
माधुर्य कादम्बिनी	20.00
आनन्द बिन्दु	50.00

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

विपुल 28/16 बी. जी. खेरमार्ग, मालाबार हिल, मुम्बई-400006

फोन : (022) 23682055, मो. : 09619858361

● शाखा कार्यालय ●

श्रीअखण्डानन्द पुस्तकालय, आनन्द कुटीर, मोतीझील, वृन्दावन-281121

फोन : (0565) 2913043, 2540487, मो. : 09837219460

आनन्द-बिन्दु

व्यवहारकी दृष्टिसे जीवनमें कितनी सावधानी चाहिए। इस बात पर मनुष्यका ध्यान न हो तो परमार्थकी भी प्राप्ति नहीं हो सकती.......

90 छोटे-छोटे आख्यान, रोचक घटनाओं, कहानियों, संस्मरणोंका अत्यन्त महत्वपूर्ण संकलन किया गया है इस आनन्द बिन्दु पुस्तिकामें !

महाराजश्री स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजीके विभिन्न प्रवचनोंसे संकलित यह पुस्तिका प्रत्येक शिष्ट, विशिष्ट हेतु आनन्द बिन्दुमें सिन्धु है !

आनन्द कानन प्रेस
टेढ़ीनीम, वाराणसी • फोन : 2392337